अँधेरों का हिसाब



शिक्षा विभाग राजस्थान
के लिये

कविता प्रकाशन, बीकानेर



सम्पादक

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

शिक्षक दिवस के अवसर पर
प्रकाशक : शिक्षा विभाग राजस्थान के लिये कविता प्रकाशन, बीकानेर/
मुद्रक : विकास आर्ट प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली/प्रथम संस्करण : ५ सितम्बर
१९६१ / आवरण : उमेश वर्मा / मूल्य : सात रुपये सड़सठ पैसे मात्र

ANDHERON KA HISHAB (A Collection of Hindi Poetry)
Edited by : Sarveshwar Dayal Saxena. Rs. 7.67 np.

आमुख

राजस्थान के शिक्षक ... प्रकाशित क

...विधाओं में कालजयी कृतियाँ दी थी, वैसे ही संतोष के साथ यह ... इतना तो स्वीकार किया ... राज्य के ... में शिक्षक ... सृजन में संपृक्त है। रही

इस वर्ष के पांच प्रकाशन हैं :—

(१) अँधेरों का हिसाब (कविता) संपा. : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना,
(२) जगत से परे (कहानी) संपा. : मन्नू भंडारी,
(३) वन्देमातरम (निबंध) संपा. : विवेकीराय,
(४) एक दुनिया बच्चों की (बाल साहित्य) संपा. : पुष्पा भारती,
(५) सिरजण (राजस्थानी) संपा. : तेजसिंह जोधा,

प्रस्तुत संकलन के रचनाकारों को मेरी बधाई तथा यशस्वी संपादक श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के प्रति मेरा आभार, कि इन्होंने अनिरिक्त श्रम करके शिक्षकों की ढेर सारी रचनाओं को देखा-परखा तथा उनमें से श्रेष्ठ व संभावनायुक्त को संकलन में स्थान दिया। साथ ही प्रकाशकों का भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने तत्परता से ये पुस्तकें यथासमय प्रकाशित करके हमें सहयोग दिया।

शिक्षक दिवस,
५ सितम्बर, १९८१.

—अशोक कुमार पाण्डे
निदेशक,
प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा, राजस्थान,
बीकानेर

[illegible] ... शिक्षकों की [illegible]
इस तरह की निम्नलिखित कविताएँ हैं :

मुझे लगता है
[illegible]
[illegible]

—रामु आर्यन

जब तुम अपनी कक्षा
[illegible]
[illegible]
[illegible]
तुम मेरा [illegible] नहीं [illegible]

—मगर चंद्र दवे

भूख की लपटें
[illegible]
[illegible]
[illegible]

—जगदीश प्रसाद मैनी

कुछ कविताएँ ऐसी भी हैं जो शिक्षक और छात्र के जीवन के यथार्थ को उनमें निहित पीड़ा और व्यंग्य को सामने लाती हैं। ये सीधी-सच्ची कविताएँ हैं। दरअसल ऐसी ही कविताओं की आशा ने जिसमें शिक्षक और उसके छात्रों की दुनिया परत-दर-परत खुले मुझे यह संकलन बनाने के लिए उत्प्रेरित किया। पर दुर्भाग्यवश ऐसी दो-चार ही कविताएँ मिलीं

कविता दूर की कौड़ी लाना नहीं है। वह भी होती है कविता, पर बहुत सिद्धहस्त हो जाने के बाद। पहली जरूरत तो कविता की यही है कि कवि का जिस धरती पर पैर है उससे वह कितना संपृक्त है, ऊपर के आसमान की चिंता बाद में आती है। 'बादलों को बाद में देखो। पहले उस पोली जमीन को देखो जिस पर पैर रखते ही तुम नीचे चले जाओगे।'

अधिकतम कविताएँ आज की नयी कविता के ही ढंग पर लिखी गयी दीखीं। यह छंदहीनता बात को कुछ साफ जरूर करती है, आसान भी पड़ती है पर हमेशा कविता नहीं होती। लगता है कि कहूँ—ऐसी कविता लिखने के बाद पहला काम जो करना चाहिए वह यह कि कविता में से कितनी पंक्तियाँ और काटी जायें। और तब तक काटते जाना चाहिए जब तक मूल भाव और मूल बात बनी रहे। जो अपनी रचना का जितना बड़ा संपादक होता है उतना ही बड़ा कवि होता है। ज्यादातर कविताओं में यह अनावश्यक विस्तार है इसीलिए उनकी ताकत खो गयी है। यह तो पहली जरूरत है। बातें और है जो कही जा सकती है लेकिन आज कविता उस मोड़ पर पहुँच गयी है जहाँ एक कवि को अपना रास्ता खुद पाना होता है, खुद ही बनाना होता है। इस्लाह का जमाना बीत गया है। इसलिए अच्छे कवियों को पढ़कर और अपनी संवेदना शक्ति और अपनी भाषा की प्रकृति को समझ कर हर कविता लिखने वालों को यह देखना चाहिए कि उसे क्या 'नहीं' करना है। क्या करना है इस का 'पेटर्न' तो सामने रहता है लेकिन क्या 'नहीं' करना है यह कवि को खोजना पड़ता है। यानी आज लिखी जा रही कविता को सामने देखकर अपनी संवेदना और भाषा की प्रकृति के अनुरूप अपना वर्जित प्रदेश हर कवि को स्वयं तय करना होगा तभी वह आज की कविता के गुणों को अपना कर भी अपनी कविता की अलग पहचान बना सकेगा और उसमें कुछ नया कर सकेगा। अन्यथा जो स्थिति आज है वही बनी रहेगी—कवि का नाम हटा दीजिए तो सब कविताएँ एक-सी दीखेंगी।

यहाँ यह भी कहना जरूरी है कि सभी कवि छंदहीन यति नियंत्रित गद्य कविता ही लिखें यह आवश्यक नहीं है। गजल या गीत अछूत नहीं है। साहित्य के क्षेत्र में कोई भी विधा अछूत नहीं होती। हर विधा अपनी सामर्थ्य से स्थान ग्रहण करती है। अच्छे गीत, अच्छी गजल (यदि सचमुच नये निखार से भरे हों) साहित्य में उतने ही आदरणीय हैं और रहेंगे जितनी आज की तथाकथित गद्य कविता। चयन करते समय गजलों और गीतों की संख्या कम नहीं मिली। काफी गजलें और गीत थे लेकिन उन

ऐसा बच्चे की भाषा और

चाँद आज़ाद

कितने मौसम बीते लेकिन अपना वो ही हाल रहा
मैं ना कुरता, तन पैजामा, सदा हवा समान रहा

कामना होती है कि यह
बच्चे की कटीली घास
घुल जायेगा और [illegible]
होगा। इसी तरह कविता इतना
भी विविध है उसी पानी की सुबह पराग पर। मेज़ पर रखी हुई गंध उठा
वैसे का भूख से बच्चों की गुड़ है
कारण नायक का इसके रचनात्मक
और

भाषा बातचीत का हाल हुआ भी — भाषा का सांकेतिक
इसमें ऐसे चिह्न, प्रतीक और शब्दों के साथ देखा सरसराता
अर्थ को तरल परतों

कवि को अँधेरों के हिसाब के साथ-साथ इसका भी हिसाब आगे चल कर रखना होता है, बल्कि रचना के क्षणों में इन सभी अँधेरों में लय हो जाना पड़ता है ताकि वह समाज के ही नहीं काव्य के उजालों का भी रूप खोज सके और एक नये लोक का निर्माण कर सके।

अँधेरे के साथ की गयी साजिश
अब कितने दिन और चलेगी ?
बर्फ की ढेर पर
सिर्फ चिनगारियाँ बिखरने भर की देर है
गर्म चिनगारियाँ,
आग से परिचित होने के बाद
इनसान और अधिक अँधेरा नहीं जीता
अपने अस्तित्व का अहसास
हो जाने के बाद
कभी विष नहीं पीता

—अर्जुन 'अरविंद'

इस संकलन को बनाने का श्रम सुख मुझे मिला है। चालने, पछोरने, बीनने के बाद ऐसे दानों को पाने का सुख जिन में चमक है और जो घुने नहीं हैं—किसी भी अर्थ में। आशा है संकलित कवि अपने काव्य धर्म में और लय होते जायेंगे और कविता, समाज तथा खुद को उन अँधेरों से उबार लायेंगे जिनका हिसाब करते इन कविताओं में वे दीख रहे हैं। अभी इतना ही।

४७ बाबर रोड, बंगाली मार्केट
नई दिल्ली-११०००१

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

□ पुष्पलता कश्यप

उतार-चढ़ाव

मुझे दुःख है कि मुझे कोई दुःख नहीं है
दुःख का दुःख या भय का भय
मुझे अब आतंकित नहीं करता

लॉन पर कुलाँचें भरते हुए बिल्ली के बच्चों-से
मेरी स्मृतियों के दृश्य
मुझसे बातें करते हैं

कोई उखड़ी हुई चीज साबुत नहीं हो सकती
लुढ़कते हुए पत्थर की भाँति वह महज गिरना होता है
इस तरह सम्पूर्ण स्वप्न ही अक्षांश रेखाओं में बँट जाता है
हर जोड़ टूटन को व्यक्त करता है
और उतार-चढ़ाव के सिलसिले
क्षितिज तक फैलते चले जाते हैं
अक्सर वहाँ आसमान साफ़ नहीं होता
आत्म प्रदर्शन की धुन में
धुंध, धुएँ और धूल के आवरण को
फाड़कर वह मात्र टिमटिमाता है

मगर मेरे सामने आशाओं का जिन्दा प्रकाशपिंड
मुस्कराता है
खिसकते-खिसकते धूप
अहाते से मुझ तक आ जाती है
और मेरी परछाइयाँ मुझसे पीछे रह जाती हैं
बिजली से राख हुए वृक्ष की भाँति

पीड़ाएँ भाग खड़ी होती हैं
मैं एक लम्बे रास्ते के छोर पर
अपने आपको बढ़ती हुई आकृति में
दूरबीन से देखती हूँ
धारावाहिक उपन्यास की भाँति रुक-रुककर
श्वास लेते पड़ाव मुझसे मिलते हैं
मैं हर किश्त को एक मुकम्मल कहानी के
अन्दाज में पढ़ती हूँ

हाँ, वह मैं ही हूँ,
मैं अपने आपको पहचानती हूँ
मेरा अंग-अंग विस्तार को ललकारता है ।

रीतापन

नये मसीहाओं की मुद्राएँ
चारों ओर जम रही है
नये समय, नये सत्य, नई अनुभूतियों
के बिम्ब इकट्ठे हो रहे हैं

हवाओं में टाँगें मारते कागजी घोड़े
आगे बढ़ रहे हैं
मुर्दा आवाजों के बिम्ब
तिलिस्म को ओढ़ कर
आकाश को नए सिरे से माप रहे है

गहरे-खामोश आतंक का ठहराव
और टूटी हुई खामोशी की रोशनी
अब एक है
पानी, बर्फ की मानिन्द

जम कर सख्त हो गया है
सब कुछ कंठित है
नाराज तर्क पंक्तिबद्ध खड़े हैं—
शरीर को ढीला छोड़, हाथ जोड़कर
जिन्दगी जंग लगी तलवार से ज्यादा
कुछ भी नहीं है

'आदमी', 'बड़ा आदमी' बनने की धुन में
कभी यह चिल्लपों, कभी वह झंडा
कभी वह मुखौटा थामता है
और कुर्सी पर बैठकर
निर्णयात्मक बात करता है

कोई पूर्व-निर्णय हमेशा
केन्द्र में लहराता

भीतरी तह का रीतापन खनकता है
फिर टूट जाता है।

सम्बन्ध

बड़े सिक्के ने
छोटे सिक्के से कहा :
तू मुझमें निहित है
मैं तुमसे बड़ा हूँ,
मैं तुम्हारा बाप हूँ...

छोटे सिक्के ने
बड़े सिक्के से कहा :
मैं तुम में निहित हूँ

तुमसे छोटा हूँ,
तुम्हारा आत्मज हूँ
इसी से तुम्हारा माप हूँ।

□ अखिलेश्वर

बाँटा हुआ प्रकाश

रोशनी बांटने से पहले
आओ अँधेरों का
हिसाब करें।
अपने हिस्से का प्रकाश
दूसरों के अंधकार में भरें।
ज्योति बांटने का यह उपक्रम
व्यर्थ नही जाएगा।
बाँटा हुआ प्रकाश
लौटकर अपने पास आएगा।
आओ मित्र
अँधेरों से जूझकर
अपनी कुटिया को
आलोकित कर लें।
दूसरों के दुःख बांट लें
और अपने घर को
सुखो से भर लें।

□ कैलाश मनहर

मैं जानता हूँ

मैं जानता हूँ /
कि सड़कें कहीं नही ले जाती—
और मंजिल पाने के भ्रम में/ये लोग
एक निरुद्देश्य यात्रा कर रहे है।
लेकिन करें भी क्या ?—
गाँव से निकलने वाली पगडण्डी—
न जाने कहाँ खो गयी/रास्ता भटक गया है खुद/

मैं जानता हूँ
कि यह सारा नाटक झूठा है/और
ये सभी संवाद थोथे हैं—
अभी कुछ देर वाद/सब कुछ खाली खाली होगा
बिल्कुल खोखला—और अकेलेपन से घिरा—
दर्शक और अभिनेता ढूंढ़ रहे होंगे
निर्देशक को/कि नाटक आगे कब और कैसे बढ़ेगा ?
और निर्देशक हाथ नहीं आने का/उनके।

मैं जानता हूँ
यात्रियों और यात्रा में
तथा नाटक और दर्शक अभिनेता में
एक औपचारिक संधि है/परन्तु अर्थहीन

□ मगर चन्द्र दवे

संकल्प

यह तुम पक्का समझो
कि बन्दूक की नोक का
भय दिखाकर
सत्य को स्वीकारने में
तुम मेरा मुँह बन्द नहीं कर सकते...
तुम भले ही मेरी
ज़ुबान काट दो
तब भी—
मेरी आँखें
वे सभी कुछ कह जाएँगी—
जिसे मेरी
ज़ुबान कहना चाहती थी...
मेरी आँखें भी
छीन लो मुझसे...
उस समय भी
मेरे हाव-भाव
मेरी चेष्टाएँ
मेरी अन्तर्वेदना
कविता बनकर
कह देगी -
किसी सशक्त कवि से...
वह उसे दे देगा—
शब्दों के ठोस पैगाम
कभी न मरने वाले वाले—
अमर आयाम...

तब भी—
तुम मुझ से बच कर
अँधेरी घुप्प किसी कन्दरा में
छुपे रहने का
मिथ्या अहसास—
पाल सकोगे…?

□ रघुनन्दन त्रिवेदी

सुबह

सुबह के
इन्तज़ार से
परेशान होकर
इंकलाब जिन्दाबाद चिल्लाने
अथवा
अँधेरे के विरुद्ध
नींद में बड़बड़ाने से
सुबह की हवा हाथों में नहीं आ जाती,
सुबह की
पहली और
आखिरी शर्त सिर्फ
जागना ही है
और जागने का मतलब
करवट बदलना तो नहीं।

वे—
नींद में
सुबह के सुनहरे ख्वाब बुनने जा रहे हैं

ग्रौर
नही जान रहे हैं कि—
ये रात के नीले धोखे ही है
(सुबह की हवा के झोंके नही)

और
करवटें बदल कर
भले ही वे
अपनी उकताहट जाहिर कर लें
(बिस्तर की सलवटों में
इन करवटों से फर्क नही आने वाला)

वे लोग
क्यू नही समझते
कि—
इस तरह
हर पाँचवें साल
(कभी बीच में ही)
करवट बदल कर
वे क्या कर लेंगे,

क्योकि
करवट बदलने का मतलब
जागना नही होता
और जागने से पहले हाथों में
सुबह की हवा नही आ जाती।

भागने से पहले

यह
दौड़ है
या कोई साजिश,

जिसमें—
अनजाने ही तुम
फँसते जा रहे हो
भागने से पहले—
कम से कम सोच तो लो
वह
मैदान
हरा-भरा
समतल,
एक सरीखे
ऊँचे मकान,
खुशहाल मजदूर
और पाटी-बस्ता लेकर
स्कूल जाते बच्चे,
यह सब
कोई धोखा तो नहीं

कहीं—
यह तो नहीं कि—
लहू और पसीने की नदियाँ
तैरने के बाद
तुम्हें—
फिर ऐसे ही
ऊँचे-नीचे मकान,
तंग अँधेरी गलियाँ,
चाय की प्यालियाँ धोते—
बीड़ियाँ फूंकते अधनंगे बच्चे
मैली-बीमार औरतें
और
और ऐसी ही
ऊबड़-खाबड़
पथरीली जमीन मिल जाये,

जहां—
शोर-धुआं-घुटन-भीड़
और वादों की बढ़िया पैकिंग में
फकत बासी रोटियों के टुकड़े
या अधकचरी फुटपाथी नींद ही हासिल हो,
और
फिर एक बार
वहां से—
कोई मैदान
हरा-भरा, समतल
एक-से ऊँचे मकान
पाटी-बस्ता लेकर स्कूल जाते बच्चे
और मजदूर खुशहाल नजर आयें,
कि तभी—
सीटी की आवाज सुनाई दे तुम्हे
और तुम—
दौड़ समझ कर
साजिश में शामिल हो जाओ,
इसलिये—
क्या बुरा है
भागने से पहले—
एक बार अगर सोच लो।

आदमी और बरतन

हम
यूं ही नही
टूट जायेंगे

चीनी के बरतनों की तरह
हाथ से छिटक कर
या जमीन पर गिर कर,

बल्कि—
और जगमगाएँगे
हवा के थपेड़े सह कर
मिट्टी के दीयों की तरह
अँधेरों में घिर कर,

आप
चाहें तो
समझ सकते हैं
हमें—
डूबती-बीतती साँझ
और किसी—
सजे हुए
ड्राइंग-रूम की खिड़की से सट कर
एक तरस-सी
महसूस कर लें
भले ही—
डूबती साँझ को देख कर,

लेकिन
आपका भरम
हर सुबह टूट जाएगा
जब फिर निकलेंगे—
हम सूरज की तरह
रोशनी का रथ हाँकते
और निखर—
सँवर कर,
क्योंकि

चहकने के अलावा
रखता हो—
साहस...!

□ भगवतीलाल व्यास

रास्ते

जिन रास्तों से हम आये है
वक्त हमें उन्ही रास्तों से
लौटने की इजाजत नही देगा
भले ही लौटने का समय
मध्याह्न दुपहरी हो या
धुंधलाती शाम।
इसलिए हम इन रास्तों पर
जो कुछ बोना चाहते हैं
आज और अभी वो दें—
कोई मुस्कान, कोई टहनी
या घोसले जैसा कोई नाम
हम इन रास्तों को जो कुछ
देना चाहते हैं
अभी और केवल अभी दे दें
कोई पहचान, कोई ऋतु गीत
या कोई प्रणाम।
जिन रास्तों से हम आए है
बहुत मुमकिन है वे
हमें न दे सकें कोई अभिवादन
इसमें व्याकुलता की बात ही क्या है
रास्तों की प्रकृति है यह तो

कि वे नही किया करते
किसी भी लौटते पाँव का
अभिनन्दन।

फूल बनता हुआ मौसम

फूल बनते हुए मौसम को देखा है तुमने ?
अवगुण्ठनवती कलियों के आँगन में
किस तरह चुपचाप
एक यायावर की निरीहता ओढ़े
क्षण सत्य सा प्रकट
और वार्धक्य सा अप्रकट
उपस्थित होता है वह !
जीवन की सारी चतुराई
और व्यावहारिकता को
धराशायी करता वह
खिलखिलाता है एक अकृपण
अट्टहास
दिग् दिगन्त में व्यापता है
सारे ज्योतिर्वलय
टूट कर निछावर होते है
जब वह अपना रथ
रोक देता है
किसी भी अज्ञात दरवाजे पर
हवाएं सांस साधे
देखना चाहती हैं
किसी अघटित को
घटित होते।

□ वासु आचार्य

शहर की हरी पौध

शहर की हरी पौध
पाले की लपेट में
आ चुकी है

अपाहिज बोध
किसी
अंधेरे कोने में
सुबकता सुबकता
ढँसने को है

सारा का सारा
अस्तित्व
हो गया है
बेपेंदा
चारों ओर फैला है
एक श्मशानी सन्नाटा

सिर्फ कुछ मक्खियाँ हैं
जो भिनभिनाती
निकलती है
बगल से

अचकचाकर
मैं अपना हाथ
अपनी नाक के पास
ले जाता हूँ

मालूम करने के लिये
कि साँस आती है
या नहीं

मुझे लगता है
मेरे सिर पर
मारे जा रहे है हथौड़े
भारी भरकम हथौड़े

और अनायास ही
मै चीख पड़ता हूँ
मैं जिन्दा हूँ
मैं जिन्दा हूँ।

☐ भागीरथ भार्गव

वह भला आदमी

वह भला-सा आदमी
हमारे बीच की एक इकाई बन
कल तक हमारे साथ था।

वह चौराहे के इस ओर
मुँह में पान की गिल्लोरियाँ दबाये
चहका करता था यहाँ-वहाँ
खादी के कुरते-पाजामा मे
झुर्रियों पड़े चेहरे के साथ
वह आम आदमी के दुःख-दर्द का साक्षी होता था
पैरों में चप्पलें घसीटते
वह हर महत्त्वपूर्ण विषय पर
अपना पक्ष रखता था।
वह भला आदमी।

वह भला-सा आदमी
देश की गरीबी व बेरोजगारी के लिए
सच्चा हमदर्द बन
कुछ निदान सोचा करता था
फिर एक दिन ऐसा हुआ
वह भला आदमी जनतंत्री करिश्मे से
छलांगें लगाता ऊँचाइयाँ छूने लगा
और वह भला आदमी
सरे आम गायब हो गया
चौराहों, चौपालों से।
अब उसका कहना है—
बीमार की योग क्रियाएँ
भूखे की उपवास ही
उत्तम चिकित्सा है।

सच तो यह है कि
अब उसका कोई पक्ष नहीं रह गया है
आला कमान की जुम्बिश में
उसकी झुकी कमर और झुकती जा रही है
कहने को सारा जहाँ उसका है
हक़ीकत में वह अपने घर में पराया है।
वह भला-सा आदमी
अब आम सड़क पर नहीं है।

लोगों की आदतें खराब हैं
आज भी उसे उन्हीं गलियारों और
नुक्कड़ों पर ढूँढ़ते हैं और
शून्य में ताकते—खड़े ही रह जाते हैं।

□ भगवती प्रसाद गौतम

सूखे दरख्तों की आवाजें

यह वह खामोश इलाका है
जहाँ न पंचायत की जोर-जबरदस्ती है
न संसद के शोरगुल की चर्चा।
यह वह झुलसी हुई मिट्टी है
जो न किसी दुबले-पतले कवि की वाणी
सुनना पसंद करती है
न किसी भारी-भरकम नेता के भाषण पर
कान लगाती है।
ये वो जंगल है
सूखे दरख्तों के जंगल !
जिनको इसी बात पर गर्व है कि
उन्होंने छोड़ दिया है अपने रंग-रूप को सँवारना,
हरे-भरे पत्तों की पोशाकें पहनकर
फल-फूलों के अनगिनती पदक टाँगना।
मगर क्यों भूलते हो भाई
दरख्तों की भी अपनी इच्छाएँ होती है
फलने-फूलने के लिए
कुछ आवश्यकताएँ होती है
इसीलिए वे अब कुछ कर गुजरने को उतारू हैं।
लगता है—वे सब तन कर खड़े हो गये है
उन्होंने भी उठा लिये हैं नारों के पट्टे
कस ली है अपनी-अपनी मुट्ठियाँ
और सोचने लगे है कि
अब अपने होंठ खोलें…खोलें…

एक भीड़ जमा हो जाए तो कुछ बोलें।
आओ,
हम इन सूखे दरख्तों की आवाजें सुनें
उनकी व्यथा-कथा का हल ढूंढ़ने के लिए
बैठकें आयोजित करें
और फिर किसी बादल के टुकड़े से कहें
कि वह नाटकीय मान-सम्मान के साथ
इन्हें पानी के गिलास पकड़ाये
वरना यह भूख हड़ताल
बरसों तक चलती रहेगी
और अधमरी जिंदगी
निष्क्रियता का प्रमाण पत्र ढोती
यों ही ढलती रहेगी।

□ जितेंद्र

आदमी है बन्दर

आदमी है बन्दर
बाहर से जाने कैसा
और जाने कैसा अन्दर!
तरह-तरह से नाच रहा है आकाओं के आगे
उछल-कूदकर दिखा रहा है अपने करतब
प्रतिक्षण बदला करता है वह नये मुखौटे
कभी निपोरे खीस, कभी अँखियन जल बरसे
कभी क्रोध में नैन बने जलते अंगारे
कभी घिघियाने लगता है निःश्वास छोड़कर।
तुमने देखा होगा ऐसे बन्दर को भी
घूमा करता है जो मृत बच्चा चिपकाए निज सीने से।
इधर आदमी को तो देखो

कितने मृत बच्चे चिपके हैं इसके उर से,
इससे कह कर तो देखो, 'तुम इन्हें छोड़ दो'
यह बोलेगा, 'मैं इन बिन जीऊँगा कैसे ?'
सड़े गले रीति-रिवाज हैं, भ्रष्ट मान्यताएँ हैं अनगिन,
जकड़ लिया है इसको कस कर
अर्थहीन औपचारिकता ने,
धर्म-कर्म के झूठे बन्धन चिपक रहे हैं जोंक सरीखे
और साथ ही ऊपर से यह भी तुर्रा है
आधुनिक युग वैज्ञानिक युग है
मानव – वैज्ञानिक मानव है ।
लेकिन जरा अक्ल से सोचो तो समझोगे
कैसा युग और कैसा मानव !
आदमी बन्दर है—बन्दर !

□ अर्जुन कावड़िया

आदमी

शेर, शेर है
हाथी, हाथी ही,
खरगोश और चूहे,
चीटी और लोमड़ी सभी
खरगोश, चूहे, चीटी और लोमड़ी है-

पर आदमी ?
आदमी—
बन्दर, चूहा, हाथी, भेड़िया, खरगोश
लोमड़ी और गीदड़
सभी कुछ है भालू, कुत्ता
और
फटा जूता ।

□ अमरसिंह पांडेय

आदमी का चक्र

यह जो दो हाथों वाला
दो पैरों वाला प्राणी है,
कहते है,
पहले चार पैरों वाला
पशु था।
दो पैरों से चलकर
दो पैरों से काम करके—
उन्हे हाथ बना लिया
और आदमी बन गया।
उसमें अपार शक्ति है—
वह समन्दर पाट सकता है
पहाड़ों को काट सकता है
धरती के गर्भ से
जलधारा फोड़ सकता है
और
नदियों की धारा मोड सकता है
आग को पानी बना सकता है
और
पानी में आग लगा सकता है
परन्तु, लगता है
एक चक्र पूरा हो गया है
आदमी फिर पशु हो रहा है
दल के दल बनाकर
गलियों और बाजारों में

निकल पड़ता है
और
···की जय हो
···का नाश हो
...जिन्दाबाद
...मुर्दाबाद
के नारों से
कानों के पर्दे फाड़ता है
हाथ रोककर
कलम रोक कर
मशीनें रोक कर
गाड़ी रोक कर
काम बंद कर देता है
घेराव करता है
अपनी ही बनाई हुई
दुनिया को
तोड़ता है
फोड़ता है
आग लगाता है
अपने ही सजातीय के
गले में जहर उतारता है
उन्हें मारता है, काटता है
नये-नये हिरोशिमा
और
नागासाकी बनाता है
आत्मा पर
शरीर की जय के
षड्यन्त्र रचाता है,
उसमें जो मानव जाग गया है
उसे बलात् सुलाता
और अपने में चिरसुप्त

सिंहों और भेड़ियों को
जगाता है
काश ! यह चक्र पूरा हो जाय
और आदमी का युग
फिर से शुरू हो जाय।

☐ रूपसिंह राठौड़

एक दर्द

जब-जब भी—
लिखने को कलम उठती है
मन मरा-मरा होता है
क्योंकि—
लिखने की बात आते ही—
स्वयं को सीमाओं-मर्यादाओं में
घिरा पाता हूँ
और—
इसके साथ-साथ
कुछ मजबूरियाँ हैं
जो केवल मेरी ही नहीं
सच मानो तो सबकी है
यथा—
कुछ भी करने से पहले
पीछे देख लेने में ही भलाई है
पानी से पहले पाल बाँध लेना ही समझदारी है।
आत्म-स्वीकारोक्ति को—
आप चाहे दुर्बलता मानें
आज हर आदमी "बच्चे पालो"

दुष्प्रवृत्ति का शिकार बन गया है
वह घर-फूंक तमाशा देखने से हिचकिचाता है ।
अतः —
क ख ग के कटघरे को तोड़कर—
बाहर आना चाहते हुए भी मौन धारे बैठा हूँ
क्योंकि—
जब-जब भी भिड़ने का मौका आया है
अपने को खुली सडक पर
अकेला पाया है ।

□ प्रकाश नारायण 'तनिक'

आत्म संतोष

मैं एक शाला में
अध्यापक के पद पर
नियुक्त हो गया हूँ ।
मुझे अब आत्मसतोष है, कि
मेरे मरने पर
मेरे विद्यालय के दो सौ छात्र
मेरे दस सहयोगीगणों के साथ
प्रार्थना स्थल पर एकत्रित होकर
दो मिनट का मौन रखेंगे
मेरी मृत आत्मा को शांति मिले
ईश्वर से प्रार्थना करेंगे ।
उसके पश्चात् शोक सभा आयोजित
की जायेगी
मेरी मृत्यु उपरांत मेरे सभी अच्छे—
बुरे कार्यों की प्रशंसा की जायेगी

मेरी घिसटती जिन्दगी के मरे हुए
आदर्शों की गौरवमयी कहानी दोहरायी जायेगी।
जिन्दगी भर मेरे चेहरे को
नफरत से देखने वाले
मेरी फोटो पर माला चढ़ायेंगे
झूठी हमदर्दी दिखाकर ग्लिसरीनी आँसू बहायेंगे।
शोक सभा के पश्चात् विद्यालय में
छुट्टी हो जायेगी।
और एक छोटे-मोटे नेता की तरह
मेरी आत्मा अमरतत्व पा जायेगी।
मुझ गरीब मास्टर के लिए इतना भी होगा
बस!
यही सोचकर मैं मन ही मन खुश हो लेता हूँ।
अध्यापक बनाने के लिए
ईश्वर को धन्यवाद दे देता हूँ।

☐ बाबू 'हँसमुख'

दोष

उसे, आवाज को क़ैद रखना, क़तई क़बूल न था/
"जब 'वो' शासन में थे, तब/'उसका' तबादला यह कहकर किया गया कि 'यह' उनका समर्थक है"/
उसे बीवी-बच्चों को छोड़कर/दूसरी तहसील में जाना पड़ा/
और जब 'ये' शासन में आये, तो/उसका तबादला जिले से बाहर कोसों दूर / यह आरोप लगाकर किया गया कि यह 'उनका' समर्थक है/
संयोग की बात थी कि/दोनों ही बार का जाँच अधिकारी एक ही व्यक्ति था/वह जिले के बाहर जाने से पहले/जाँच अधिकारी के

पास जाकर बोला – हुजूर! /आपने शासन के प्रभाव से दोनों ही बार मेरे विरुद्ध रिपोर्ट दी है/और मुझे मजबूरन नयी जगह जाना पड़ेगा/किन्तु कृपया इतना तो बता दीजिये कि/मैं वास्तव में किन-का समर्थक हूँ ? और मेरा दोष क्या है ?/और भविष्य में मुझे किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ।/
जाँच अधिकारी ने उत्तर दिया/आप न उनके समर्थक है और न ही इनके/आप न्याय के समर्थक है/और आपका दोष यह है कि/आप अन्याय के विरुद्ध बोलते हैं/आपको अपनी आवाज को कैद रखना चाहिए ।

☐ श्यामसुन्दर भारती

बालक का गीत

पुस्तक है मौन
और
अध्यापक शंकित है
बालक के चेहरे पर
प्रश्नचिह्न अंकित है

सुबह-सुबह खेत गया
खुरपी से खोदी कर
अभी-अभी आया है
धोरों की धरती में
पानी तो मिला नहीं
धूल से नहाया है
कुछ खाया-पिया नहीं
गृह-कार्य किया नहीं
मास्साब मारेंगे इससे आतंकित है

विभ्रम-सा
बालक कुछ सोच रहा

खेतों में बाप मरा
बापू का बाप मरा
उसका भी बाप मरा
मुझ को भी उसी तरह
खेतों में—
जीते जी मरना है
कभी-कभी बालक के भेजे में जँचता
मास्साब से पूछूँ
पढ़ कर क्या करना है

पुस्तक है मौन
और
अध्यापक शंकित है।

□ कैलाश मनहर

निश्चित नहीं

कपूर बन गये सब वायदे
धुआं कसमों से उठा जा रहा है—
कुछ भी तो निश्चित नहीं—
किस ओर हैं वे—
ये समय/बेकार लुटा जा रहा है।

रात है/या/ये कोई ठहराव है—
जिन्दगी पर—
झूठ का पथराव है।

इस अँधेरी कोठरी में—
सत्य घुटा जा रहा है।
कोई हमराह नहीं/रस्ते में
हर खुशी/
लुट रही है सस्ते में।
भाग्य है मेहनत मगर
दिन रात कुटा जा रहा है।
कुछ भी तो निश्चित नहीं
किस ओर है वे—
ये समय/बेकार लुटा जा रहा है।

चूहों का गीत

छुप के जीते है—
छुप के मरते है—
चूहे/जो आदमी से डरते हैं।

रोशनी/
लांछन लगाये तो।
देखकर/
कोई उन्हें भगाये तो।
घुस के अँधेरे में कहीं न कहीं
खुद/अपनी खाल को कुतरते है—
चूहे/जो आदमी से डरते हैं।

इनकी धरती है/
मेरे और आपके दिल में।
इनकी आवाज
किसी बेवजह-सी खिलखिल में।
इनसे तो अच्छे है/गिरगिट/कि जो हर घड़ी
रंग बदलते हैं/और संवरते है
चूहे ही / आदमी से डरते हैं।

□ जगदीश प्रसाद सैनी

सीढ़ी के डंडे

तुम्हारी नज़र में हम
आदमी नहीं
सीढ़ी के डंडे भर रह गये हैं
जिन पर पाँव धर-धर कर—
सत्ता की आलीशान इमारत पर—
चढ़ जाते हो
फिर, उन्हें भारी जूते वाले
पैर की ठोकर मार कर
ज़मीन पर पटक
आगे बढ़ जाते हो।

मगर सावधान !
जरा सँभल कर मारना ठोकर
जूते की रगड़ चिन्गारी को जन्म दे जाती है
जो लपट बन जाने पर
काबू में नहीं आती है
भस्म हो जायेगी यह इमारत
जिसकी गर्म राख में भुन जाओगे
बैंगन से।

□ श्रीनन्दन चतुर्वेदी

समाधान

हमने राजनेता का
इंटरव्यू लिया
उसके भाषण को
घूंट-घूंट पिया
"आगजनी बढ़ी है"
हमारा आक्रोश था।
नेता प्रत्युत्तर में
बिलकुल खामोश था।
मौन तोड़ बोला—
"हमने समस्या सुलझा ली है,
बाहर क्या घर की भी
आग बुझा डाली है।
कोयले की मूल्य वृद्धि—
इसी का निवारण था,
तेल की कमी करना
दूसरा चरण था।
बांस न हो तो
बांसुरी नहीं बजती
तेल-पैट्रोल बिना
आग भी नहीं लगती।
आग घर में नहीं—
बाहर क्या लगेगी?
बड़ी विकट समस्या है,
इसी तरह सुलझेगी।

□ चतुर कोठारी

एक सत्य

मैं जो बोल रहा हूँ
वह सत्य नहीं
सत्य वह है
जो हृदय में है।

मैं जो लिख रहा हूँ
वह सत्य नहीं
सत्य वह है
जो भाव में है।

मैं जो कर रहा हूँ
वह सत्य नहीं
सत्य वह है
जो उपलब्धि में है।

पहिचान

अपने
दुख की रपट
कहाँ लिखाता है ?
और
न्याय के लिये
भीख मांगने

कहाँ जाना है ?
जरा सोच ! कि—
जब तक तुझे
सुरक्षा की
गारण्टी मिलेगी
और
न्याय का
गनपत्रिका
परवाना मिलेगा
तब तक
तेरे बच्चे
जवान हो जाएँगे
और तू !
बुड्ढा हो जायेगा।
ऐ !
मेरे जवांमर्द साथी
तू !
अपने आपको पहिचान
तेरे हाथ में जो कागज (मतपत्र) है
उस पर—
तेरे विश्वास के चिह्न पर
छाप लगादे, तो
देखते ही देखते
एक नया सूर्योदय
हो जायेगा।
फिर
सुरक्षा के लिये
तुझे
आँसू नहीं बहाने पड़ेंगे
और न्याय के लिये
भीख नहीं माँगनी पड़ेगी।

साथी ! तू
अपने अधिकार की ताकत को
पहिचान ! पहिचान ! और पहिचान।

□ आनन्द कुरैशी

वर्ष भर बाद

भीगे स्वरों की बुदबुदाहट
वर्ष भर बाद,
मेरी देहरी पर आई है,
मैं फिर जन्मा हूँ—
पुष्पहार के बोझ तले !
राजघाट की मौन हरीतिमा —
सकुचाते कदमों की आहट !

दूर किसी कला-मन्दिर के कोने में
रजकण से आच्छादित मेरी तस्वीर,
जो परित्यक्त-सी
अनबनी
अनसुनी,
रामराज्य की अधबनी निशानी-सी
खामोश पड़ी थी,
आज वर्ष भर बाद
तुमने उसे पुष्पहार से सजा दी है
युग-युग से चली आई—
जग की रीति निभा दी है !

खामोश चरखों की घरघराहट
अब फिर उभर आई है,

'पतित-पावन' को लोरी गा
मेरे बलिदानों की गाथा
तुमने दोहराई है !
पर न जाने क्यों —
फिर भी, हरिजनों की पीर
मेरे अन्तर में कसमसाई है !
पता नहीं क्या हुआ
मेरे जीवन भर के तप का ?
मैंने सुना है मेरे अस्तित्व पर -
स्वार्थ की नीव जमी है,
और मेरी वसीयत
मेरी विरासत के हाथों
व्यापार बनी है !

मैं खुश हूँ
मेरी यादों के सहारे तुम्हारी जिन्दगी
आराम से कट रही है,
हर मेहरबान के हाथों
देश की तकदीर
बंट रही है !

कोई शिकायत नहीं,
यह तो हर दौर में होता है
कौन किसके लिए रोता है !
कौन किसका भार ढोता है !!

चलो एक वर्ष भर याद सही
तुम्हें मेरी याद तो आई,
कल न जाने क्या हो,
जीवन भर मेरे नाम को लेकर—
तुमने जो यश कमाया है
फिर मिले न मिले,
मेरे नाम का सिक्का जो कल निकला है—
फिर चले न चले !

□ रमेशचन्द्र भट्ट 'चन्द्रेश'

हमारा खून ...खून नहीं पानी है

वह पानी
जो हमेशा निचली ही
जमीन की ओर बहता है
यूं कहता है
कि मैं जीता हूँ—
केवल एक दबे केंचुए की तरह
धरती की कोख में
बोझ बन कर।
मेरे आँचल में लगे
कई पैबंदों से—
सभी को—जोश का
अपने उठते होश का
भ्रम हो जाता है।
जब मैं अपने चरमोत्कर्ष पर
होता हूँ।
धुंआ-सा उठता है
एक गीली लकड़ी की तरह
सुलगता हूँ।
मेरी भावना जो पत्तीदार
पत्ती एक लाँघती है।
फूलों और फूलों तक दौड़ती है।
नैतिकता के परिवेश पहिने
उबाल खाते ये वेश और गहने
कि—
निर्ममता से चीर डालूं।

मगर समय का वह साँप
सिंहासन पर बैठकर
एक लम्बी खाई खोदता है
अब हरेक नया रिश्ता एक कहानी है,
हमारा खून···खून नहीं···पानी है।

वह भी थे इन्सान
उस जमाने के कभी,
मिट गये खुद जो
जमाने के लिये।
और अब···अब
भी इन्सान है
हैवानियत ओढ़े हुए
एक कठफोड़े की तरह
आज की हवा ने
खींच लिया जिनका
पर्दा
लिख रहा है इतिहास
देखते-देखते
बदल रहा है रिश्ता
और हम लाठी लिये
भीड में घायल
खून को
पहिचानने को
लालटेन जलाकर
देख रहे है।
मृतक लाश मेरे
अरुण खून की—
और उसके ऊपर
थूकती घृणा
बवण्डरों की लकीरें

बस, आज की
जवानी है।
हमारा ख़ून…
…ख़ून नहीं…
…पानी है।

□ अर्जुन 'अरविंद'

अस्तित्व का अहसास

सूरज के
ऊँघने के साथ ही
बुझी हुई शामों का ढेर बिखर जाता है जहाँ-तहाँ
दृष्टि के आसपास
पर्तें दर पर्तें जम जाती है वर्फ़
जो किसी भी तापमान पर
तनिक भी नहीं पिघलती
और मानवीयता
फैशन, सुविधा या मात्र जरूरत का नाम
होकर रह जाती है
जो कभी-कभी ओढ़ ली जाती है
कोई अंतर नहीं पड़ता
न कोई विघ्न
उसके मखमली तकिया बनने में
अथवा चंद रुपयों की खड़खड़ाहट पाकर
गरम विस्तर की तरह बिछ जाने में
वस्तियाँ उनसे भी बनती हैं
जो हर सतह पर बिकने को
मजबूर होते हैं

ग्रौर
इतना ढीठ हो गया है मौसम
जो हर शाम का रंग गाढ़ा होते ही
सिर चढ़कर बोलने लगता है
जो कुछ भी ढका होता है
उसे खोलने लगता है
मंच बनने लगते है
और उनकी पीठ पर चढ़कर
पूरी गर्मजोशी के साथ
भूकंप उठाने की बात होती है
किंतु विवशता की गलियों से गुजरते हुए
पूरी की पूरी पीढ़ी
अँधेरे में डूब जाती है
आत्म-हत्या का अर्थ
तलाशता मन
उलझ जाता है
कुंग्रारी लड़की के पेट का उभार
निरंतर बढ़ता देखकर
प्रश्न करवट लेता है—
तपते मरुस्थल में
किस तरह उग आते है कैक्टस ?
बहस खाने में
महज शोरगुल उमडता है
जहाँ हर भाषा
शब्दों की बैसाखी के सहारे
लंबी छलाँग भरने का प्रयत्न करती है
और पूरी की पूरी भीड़
लड़खड़ाकर गिर जाती है एक दूसरे पर
अँधेरे के साथ की गयी साजिश
ग्रब कितने दिन और चलेगी ?
बर्फ के ढेर पर
सिर्फ चिंगारियाँ बिखरने भर की देर है

गर्म चिंगारियाँ,
आग से परिचित होने के बाद
इंसान और अधिक अँधेरा नहीं जीता
अपने अस्तित्व का अहसास
हो जाने के बाद
कभी विष नहीं पीता।

❐ पृथ्वीराज दवे 'निराश'

अनावश्यक वस्तुएँ

मेरे आस-पास
बिखरी है, अनेक वस्तुएँ –
रद्दी कागज, अखबार की कतरनें
पुराने चिथड़े, बच्चों के खिलौने
और ढेर सारी अनावश्यक वस्तुएँ—
थोथे विचार, कोरी कल्पनाएँ,
अपूर्ण आदर्श, टूटे सपने और
खट्टे-मीठे अनुभवों का अम्बार।

यह सब मिलकर एक बोझ-सा
बन गया है मेरे लिए
और जब-तब मैं इन सबको
इकट्ठा कर बाहर डालने को
तैयार हो जाता हूँ···

कई बार
एक निश्चय के साथ उठता हूँ
तैश में आकर तय करता हूँ
कि— इस बार कुछ भी

शेष नहीं रहने दूंगा,
जला डालूंगा, इस सारे
कचरे को—
सारी आकांक्षाओं को,
कोरी कल्पनाओं को,
थोथे आदर्शों को,
रद्दी की गठरियों को।
.. ..

एक उड़ती दृष्टि डालता हूँ
उस सारे ढेर पर
जिसमें बिखरी हैं, मेरी वे सभी
अनावश्यक वस्तुएँ,
जो क्षण भर में ही इस जौहर में
जल कर खाक़ हो जाएँगी...

ढेर से लौटती दृष्टि
पड़ती है जो अपने आस-पास
तो लगता है—
मेरा पूरा घर ही निःशेष हो गया है
जीवन अब लगने लगता है
सूना-सूना सा,
मुझे लगता है कि—
यदि ये सारी वस्तुएँ
जला डाली तो मेरे पास
अपना कहने को कुछ भी
रह नहीं पाएगा और
यह खाली घर मुझे काट खाएगा
मैं पागल हो जाऊंगा...

तब—
विवश मैं
उस ढेर में से
चुनने लगता हूँ—अत्यावश्यक वस्तुएं...

इसी क्रिया के बीच, मैं
आश्चर्यचकित हो
आंखें फाड़, विक्षिप्त-सा
ढूंढ़ने लगता हूँ
अनावश्यक वस्तुएँ—
उस ढेर में !

□ कजोड़ीमल सैनी

कह दो, क्या यह नहीं किया है ?

निज वैभव के बल से तुमने—
कह दो,
क्या यह नही किया है ?

मानव से मैला ढुलवा कर
उसे पशु से हीन समझ कर
तिरस्कार कर नित ठुकरा कर
क्या अछूत तक नहीं कहा है ?

जाड़े कँपते
लू में तपते
वर्षा भीगते
किसानों के खलिहानों का
उठा अनाज सारा का सारा
उन्हे फिरा कर मारा-मारा
नहीं अन्न मोहताज किया है ?

कठोर श्रम से वे बेचारे
उत्पादन का ढेर लगाते

कर निर्यात विदेशों तक में
तुम मनचाहा लाभ कमाते
उनको रख अधभूखा-नंगा
श्रम का शोषण नहीं किया है ?

□ गोपालप्रसाद मुद्गल

काली पीठ

इस टमाटर की बगिया में,
ये लाल-लाल टमाटर,
हरे-हरे पत्तों के बीच,
बिजली की तरह जगमगा रहे हैं।
किन्तु, इसके मालिक को तो देखो—
उसकी चमक कहां गई ?
उसका रंग कहां गया ?
उसकी पीठ—
चिमनी से निकले धुएँ को भी मात दे रही है
जरूर इसने अपना खून
इन टमाटरों को दे दिया है।

□ मनमोहन झा

बदलाव

उन्होंने यों ही धूप में
अपने बाल सफ़ेद नहीं किये थे
उनकी जवान पर थी

धर्म/क़ानून/परम्पराओं/और/नैतिक आदर्शों की
शास्त्रीय व्याख्याएँ
उनको कंठस्थ थे
ज्ञान-विज्ञान/तन्त्र-मन्त्र/पूर्वी पाश्चात्य दर्शन
वे मिनटों में सिद्ध या रद्द
कर सकते थे
सृष्टि से लेकर/सृष्टा का अस्तित्व
सुख-दुख/स्वर्ग-नर्क
आनन्द/परमानन्द को परिभाषित करना
उनके बायें हाथ का खेल था
जमीन से थोड़ा ऊँचा उठकर चलना
उनकी आदत और अदा थी
वे शब्दों के जादूगर थे
उनको शिकायत थी
नई पीढ़ी/उनको नकार कर
जहन्नुम जा रही है/और
नई पीढ़ी/उनके जहन्नुम से निकलकर
गुमनाम जन्नत की तलाश में
एक आत्मघाती बारूदी अभ्यास में व्यस्त थी
इनको शिकायत थी/उन पर थोपा गया है
भटकाव
महज़ मनोरंजन के लिए
पैदा किये जाने पर
मुखर हो रहा है एतराज
इसके पहले कि
काच की इमारतों पर शुरू हो
पथराव
शब्दों के जादूगर
बंद करें/तमाम बकवास -
छोड़ें आकाश
पहले खुद बदलें तभी आयेगा
नये छोकरों में बदलाव !

□ नन्दकिशोर चतुर्वेदी

मेरा सूरज

सूख गई
आतंक से
मन में लहराती भावों की लहरें
क्योंकि आज भी
टूटी चौखट से
झाँक गया कोई सिपैया/देख कर
फटी घाघरी, मैली चोली
और जर्जर चूनरी को
हँस पड़ा सरकारी रुपैया
भीगी लकड़ी और उपलों का
कसैला धुंआ
घुस कर फेंफड़ों में
छीनने लगा सुख की बीद
छायाएँ बन बैठी नींद
काले कपड़ों को खींचने लगा
दिवस प्रहरी : अन्धा सूरज
बिखर गये
सरकारी रथ के पहिये
लाज के पर्दे
हो गये चिथड़े-चिथड़े
चौराहे महायुद्ध के प्रांगण
फूट नीति फैली हर आँगन
तब
मेरा सूरज : सोख गया
मुझे ही भाप बना कर।

□ मोड़सिंह बल्ला 'मृगेन्द्र'

मुझे नहीं पता

जब मुर्गा बाँग देता है
तब सवेरा होता है
या जब सवेरा होता है
तब मुर्गा बाँग देता है
इसकी फिलासफी क्या है ?
मुझे नहीं पता !

पर
पिछले कुछ दशकों में
मुर्गानुमा आदमी जरूर पैदा हुए
इस देश में
वे बाँग देते हैं
'विकास होगा ।'
पर होता नहीं
'समाजवाद आयेगा ।'
पर आता नही
'गरीबी का नाश होगा ।'
और गरीबों का नाश हो रहा है
इसकी फिलासफी क्या है ?
मुझे नहीं पता !

□ शिव 'मृदुल'

बदलते मूल्य

समय के शरीर में क्या वह
संस्कृति की आत्मा को
महसूस करने लगा है—
सूंड में
सुई चुभोये बिना ही हाथी
दर्जी की दुकान में
कीचड़ छाँट जाता है।

कौआ
मटके के छिछले पानी में
कंकर डाल कर
सतह को ऊपर उठा
प्यास बुझाने के बजाय
मटके को फोड़ कर
पानी पी रहा है।

जंगल का राजा
विनम्र शब्दों में
अनुनय-विनय के बावजूद
गुफा में आये
चूहे को तो क्या
मच्छर को भी नहीं छोड़ता।

अपनी
मौलिक मन्थर गति से
निरन्तर चल कर

दौड़ में जीतने वाला
बेचारा कछुआ
उछलते खरगोश की
टाँग से बँध कर भी
मञ्जिल पर
अपने से पहले
किसी और को पहुँचा हुआ पाता है।

डूबती मधुमक्खी को
बचाने वाली चिड़िया पर
शिकारी/आज
उसी मधुमक्खी की/साँठ-गाँठ से
निशाना ताक रहा है।

किसान
अपने सातों लड़कों को बुला कर
लकड़ी के बँधे गट्ठर को
स्वयं के हाथों से खोल कर
दे रहा है
एक-एक लकड़ी को
तोड़ने का प्रशिक्षण।

□ कैलाश चतुर्वेदी

तुम और मैं

जब भी मौन रहा
गृहस्थी की बातों से
उकता कर गौण रहा
तुम घबराकर

पथराई आँखों से
मुझे देखती ही रही
जैसे मैं
किसी शिला पर
टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं में
कच्चा-सा
'स्केच' बना हूँ
और तुम
इसके मूल रूप को
पा जाने की
मृग-तृष्णा में
खड़ी रहोगी
आखिर कब तक !
अब तक तुम ने
अंगारों के
'पिरामिडों' को
स्वप्नों में पाला है
मैं बर्फ नहीं
जो जल-धारा का रूप लिये
ढाल देखकर
बह जाऊँगा
या चढ़ान पर
रुक पाऊँगा
मुझको चढ़ती-गिरती
श्वासों का
बोध नहीं
मैं गहन अन्ध के
सन्नाटे में
पला एक पत्थर हूँ
सावन-सा
नैन नहीं।

□ पुष्पलता कश्यप

झील के किनारे

परछाइयाँ झिलमिलाती
झील की देह पर

मूक-क्षणी-शृंखला
कड़ियों सहित
खनखना उठी

मानसिक ऊहापोह
झील में जा गिरी
चुपके से

किनारे के बिम्ब
धँसते जा रहे हैं

छोटे-छोटे पत्थर
किनारे से फिसलते

सुरमई-टुकड़े
समुद्र के बादलों से निकल
आपस में गुँथते

ब्राह्मण के चौके-सा
घुला-घुला गीला
आकाश

ओझल हो गई
चौकड़ियाँ भरती
मायूसी

आओ !
फुहारों को रौंदते हुए
चलें ।

□ साँवर दइया

चहकती-फुदकती चिड़ियाँ

आज सुबह
पेड़ की डाल पर
फिर चहकीं चिड़ियाँ
सुना मैंने

पेड़ की
नंगी डालों पर
फुदक रही थीं चिड़ियां
देखा मैंने

खाली कनस्तर
ठण्डा चूल्हा
प्रश्नचिह्न बनी आँखें
मन को छीलने वाली
चुप्पी में गूंजती
अनिवार्य आवश्यकताओं की सूची

बुझा है मन मेरा
पेड़ नहीं है हरा
फिर भी
चहक / फुदक रही हैं
चिड़ियाँ

खुद देख / समझ कर
बच्चों को दिखलाता हूं—
देखो, कैसे फुदक रही हैं चिड़ियाँ !
देखो, कैसे चहक रही है चिड़ियाँ !

हिनहिनाता घोड़ा

यह एकान्त
यह कमरा
रेशमी अँधेरा ओढ़े
सुगन्ध बिखेरती सन्दली देह
छूते ही देह
नस-नस में
तनतनाता है
पानी
लगता है
मैं
मैं नहीं
हिनहिनाता घोड़ा हूँ !

□ कु. कैरोलीन जोसफ

गंधर्व प्रिया

पाँखुरी पर
साँझ ने कर दिये
सुनहरे हस्ताक्षर।

सुरमई पहाड़ी के साँवले माथे पर
सूरज ने लगा दी
कुमकुमी मोहर।

देह कँवल रोमाञ्चित
मंज-मृदुल कामना
हो गई मुखर।

भील के अन्तस
उभर-उभर ठहर गये
गोपन साये
दू...दूऽऽर...विजन
कोई गंधर्व प्रिया
विह्वल सुरों में
एक आग्नेय गीत गाये
अबकी वसंत/तुम फिर नहीं आये।

□ भागीरथ भार्गव

परिवर्तन

आँखों में समाये सूना जंगल
सांय-सांय करती चलती थी हवा
सूखी-सूखी पत्तियों से आच्छादित
खोये-खोये थे वृक्ष।

बोझिल साँसें थी कम्पित
अनाहूत खंडित सपनों से
बिखरा-बिखरा था मन
दूर-दूर तक नहीं थी कोई
ज्योति किरण।

फिर कुछ ऐसा हुआ
खिल आये अंग-अंग में गुलाव
श्वास-श्वास में विखरा
कहीं खस, कही हिना और···

अमलतासी गातों में
गुलमुहरी छा गया रंग
शिरीष की गंध छा गई पोर-पोर में
अन्तर का हिरण भरने लगा
दूर-दूर तक मुक्त कुलाँचें।

सच,
पूरा ही वातास हो गया गंधिल।

□ निशांत

वर्षा के वाद रेगिस्तान

गीली-गीली है
धरती सारी
ममतामयी
कुदरत ने
खूब सारे घी में
चूर दिया है
ढेरों सारा चूरमा
जिसे खा-खा कर
ले रही है
अंगड़ाइयाँ
वनस्पतियाँ
यहाँ
वहाँ !

□ राजेन्द्रसिंह चौहान

सोचा था

सोचा था
मौसम बदला है
वर्षा की बौछार तो होगी
झरनों की धारा फूटेगी
हर कण में विश्वास जगेगा
धरती माँ शृंगार करेगी।
किसने सोचा था
ऐसा होगा कि
ओलों के संग वर्षा होगी
बर्फ गिरेगी इतनी कसके
ओझल हर पगडंडी होगी
हर चेहरा कोहरा ओढेगा
कदम-कदम पर फिसलन होगी
मौसम बदला है
फिर बदलेगा...

□ मुरलीधर वैष्णव 'हारिल'

रात का एक बज रहा है

कहीं मीठी खुमारी में
कहीं नींद से कोसों दूर

रात का एक बज रहा है।
बिस्तर पर करवट बदलते विचार
जबरन धकियाते हुए
जाने क्यों ले आए हैं बाहर बरामदे में मुझे
यह मन—बरामदे के खम्भे पर चढ़ आई बेल से
सटा जा रहा है अनायास ही
कुछ अजीब-सा लग रहा है
कि जैसे मेरी बाँहों में कहीं
वृक्ष-रस चढ़ आया है
कि जैसे वृक्ष मेरे वक्ष में उग आया है
और बेल-सी कोई फरफराती आत्मा
वक्ष में उगे वृक्ष से चिपट गई है
प्रगाढ़ आलिंगन में बँध गई है।
अलसायी भारी पलकें अनुभव करती हैं
कि कल्पनाएँ बेसिर-पैर संचरण कर रही हैं
भ्रम होता है कि सामने फैले
जंगलों की काष्ठ आँखें
मेरी अबोधता के स्थापत्य को/देख रही हैं एकटक
तीखी हवा के झोंकों पर फड़फड़ाते
महाकाय पीपल के संग
कहीं गहरे सोच में
कहीं सोच से कोसों दूर
रात का एक बज रहा है।

□ नमोनाथ अवस्थी

एक वर्षा भीगी संध्या

अपने सारे दर्द को निचोड़कर जब तुमने उसे
महा मृत्युंजय बना लिया है

तो अब और किसका पता पूछते फिरते हो—
इन सुनसान गलियों में ?
यह शाम की बारिश है
यहाँ से सूखे पाँव वापिस जाना कठिन पड़ेगा, मेरे पुरुरवा !
आओ, हम दोनों एक बार फिर
दर्पण हो जायें।
ये सघन वृक्ष—मैं जानता हूँ क्यों तुम्हारे
आकाश से मेल खा जाते हैं,
और इस भीगे नम मौसम में जब-जब मुझे तुम्हारे
सदानीरा चमचमाते पुतलियों के बीच दो
मोतियों की याद आती है
तो
मैं फटे अखबार के पृष्ठ की तरह
दो-दो टूक हो जाता हूँ।
आग के दो भटकते ये शिलालेख
कभी इतिहास नहीं बन सकेंगे क्या ?
मेरी बूढ़ी नाव पर/मैं देख रहा हूँ
एक सफेद पंखों वाला बगुला
हंस की भाषा बोल रहा है
मेरी माला के गुरिये
तुम्हें प्रणाम
मेरे तुम्हें भीगे हुए प्रणाम।

□ अरनी रॉबर्ट्स

अनिश्चितता के क्रम में

बार-बार 'अपने' को
विस्थापित करने के क्रम में

हम कितना टूटते है, यह बात
अगर पहले ही जान लेते तो
विस्थापन का मोह ही छोड़ देते !
अपने भीतर का लावा, दूसरों पर
उगलने से पहले 'मैं', अपने
कपड़ों पर अपने ही मुँह से गिरी
पान की पीक देख लूँ तो वस्तुत:
दूसरों की धज्जियाँ उडाने की बात
कम से कम मेरे दिमाग में न आये
क्योंकि इस क्रम में भी मेरा खंड-खंड
होकर बिखरना निश्चित होता है ।
'तुम' पहले तो ऐसे न थे,
अब किस कुंठा का शिकार हो
गये हो ? तुम्हारी जुबान पहले से
बहुत लंबी हो गयी है ! धाराप्रवाह
आलोचनायें और कोसने वाले शब्द
तुम्हे अँधेरे की जिस खोह में ले
जा रहे है, उसे तुम खड़े होने का धरातल मान
रहे हो ।
'उसने' आज सच्चाई को, चाकू
की नोक पर रखकर, एक दिल
दहलाने वाला काम किया !
वह हमेशा झूठ के स्लाइसों को
खाता-खिलाता रहा है, इसीलिए
हर रात गहरी नींद सोता है !
'वे' आज रात अर्थियाँ
लिये घूम रहे हैं, उन्हें लाशों की जरूरत है !
सुना है, आदमी का अवमूल्यन हो गया है ।

□ रश्मि गुप्ता

तुमने नहीं देखा है

वर्फ को पिघल कर पानी वनते
तुमने नही देखा है,
पाषाण को सुन्दर मूर्ति में ढलते
तुमने नहीं देखा है,
अँधेरों को उजालों में सिमटते
तुमने नहीं देखा है,
काले को सिर्फ काला वताने वाले
उन्हें सफेदी में वदलते
तुमने नही देखा है।

□

भीड से निकल कर चौराहे तक
आना तो चाहा था मगर
हजारों की सख्या में
लोग-घिरे थे आसपास
चींटियों से रेंगते अहसास –
उनके बेतहाशा शोर में
दफ़न हो गये थे।
वहाँ से निकल पाना सहज था तव
जब मन के साथ
दीवार से तिलचट्टे-सी चिपकी
भावनाएं भी वहीं छूट जातीं।

☐ कु. खुशाल श्रीवास्तव

बड़ी ठण्ड है

बड़ी ठण्ड है
भावों की सरितायें और विचारों के नद
सब बर्फ़ बन गये
सारी धरती ही जम गई।
नीचे दबी पड़ी पीली घास
प्रतीक्षा में है
कब तपेगा सूर्य
कब बर्फ़ की इस ठोस कब्र से
मुक्ति मिलेगी।
यह जीते-जी की तिल-तिल नजदीक आती मौत तो
काशी करवत ही है
कौन देगा सूर्य की नर्म-गर्म किरण के
आगमन का सन्देश
कब मिलेगा इस ठण्ड की जड़ता से त्राण
आतुर जिन्दगी
ठण्डे कफ़न के नीचे तड़प रही है
बड़ी ठण्ड है।

□ कमला वर्मा

रोशनी आने तक

अंधेरी रात में
अकस्मात आई हुई रोशनी
चांद की नहीं होती।
वह रास्ता खोजने वाली
कोई लालटेन होती है।
चांद की रोशनी आने में
समय लगता है।
भूख मर चुकी होती है,
नींद संन्यासी वेश में
ध्यान लगाने लगती है
आंखों की आरती
किसी कूड़े में
गिर चुकी होती है।

□

जब वह
उसके पास होता है
पहचानती ही नहीं।
पहचान के बाद
वह उसके हाथ से
फिसल चुका होता है।
सारी उम्र
फिर उसकी खोज में
खुरपी की तरह
हर धरातल छेदती रहती है।

जब वह उसे पाने
पहाड़ पर चढ़ती है
पैर मुड़ जाते हैं,
नदी नाले पार कर
घने जंगल में प्रवेश करती है,
उल्लू और चमगादड़ों की
आवाजें सुन सुन
जंगल की संस्कृति बनने पर
विवश हो जाती है।
जब वह
अपने ही रेगिस्तान में
रुकी रहती है,
रेत पर उसकी तस्वीर बनाती है,
वह पीछे से आकर
उसके कंधे पर
झुक जाता है।

□ श्रीमती आशा शर्मा

दो गीत

बाँसों से धूप जब उतरती है
चिड़ियायें थकी-थकी लगती हैं।
सुबह पंख खोले थे
एक शहर लाँघ दिया,
शाम की हवाओं को
पेड़ों पर टाँग दिया,
दिन भर की हार-जीत गिनती है
शाखों पर संस्मरण लिखती है।

टुकुर-टुकुर आँगों में,
बादल भर पानी है,
कल दिन की चिंताएँ,
रात की जवानी है,
पत्तो की टोकनी बरजती है
चुपके से दूब पर टहलती है।



बाजरे की सीटियों में
इस बरस दाने नहीं हैं
चिड़िया ने पेड़ से कहा।
बहुत दूर घूमी हूँ
बरखा का पता नहीं कोई,
अपने इस रामदास धोबी की
सूनी है आजकल रसोई।
घाघरे और ओढ़ने
इस बार रंगवाने नहीं है,
चिड़िया ने पेड़ से कहा।
बावड़ी सूखी पड़ी है
माँडणे धुंधला गये हैं,
फिर महाजन की बही
और बैंत के दिन आ गये हैं।
छोड़कर उड़ जायें तुमको यहाँ,
हम ऐसे बेगाने नहीं,
चिड़िया ने पेड़ से कहा।

□ जनकराज पारीक

अब के बरस

अब
जो हवाओं में बच रही है
अनुगूंज,
वह मेरे गीतों की नही
रुदन की है।
पर्वतिया धोरों की चोटियों पर
सूरज की किरणों के साथ
फफोले फूट रहे है,
मरुथल के मानुष
मजे नही
व्यथाएं लूट रहे है
उनके हिस्से की हँसी
दिशाएँ पी गई है।
हाँय-हाँय करते ऊसर को
इस बार बन्ने खुद चरेगा
मवेशी नही चराएगा
उसकी नव-विवाहिता छिन्दो
जानती है
कि इस बरस सावन नहीं आएगा।

□ केशव 'पथिक'

नवयुग आया

सूरज डूबा
साँझ हुई
गुवाले आये गाँव में,
चन्दा सोया
तारे नाचे
घुँघरू बाँधे पाँव में।
चौपालों पर
बूढ़े बैठे
चर्चाओं का दौर है,
लूटपाट और
तोड़-फोड़ का
गाँव-गाँव में शोर है।
पानी महँगा
ईंधन महँगा
यह कैसा युग आया है,
मेरे घर की
हँसी उड़ाने
मेहमानों को लाया है।

□ रमेश 'मयंक'

जंगल में

गोधूलि वेला में
स्वर्णिम आकाश को
पीने की कोशिश करते हुए
कदमों के खंजर से
हवा का उदर चीर देता हूँ।

रक्तिम सूर्य के
पूरी तरह निचुड़ने से पहले
एक झुंड लिये आगे बढ़ता गडरिया
मुझे निचोड़ कर छोड़ देता है
जटाजूट जंगल में
आदि मानव के समानान्तर
गुर्राते अलसेशियन के साथ।

तब
टेरीन के होते हुए भी
निर्वस्त्र महसूस करते हुए
शरीर ढकने की सोचकर
मैं—
हरे पत्तों की टोह में भटकने लगता हूँ।

□ वरदीचन्द राव

विवशता

मेरा जीवन
मिट्टी का एक कच्चा घड़ा है
जो 'त्रिशंकु' की तरह
अधर में लटका पड़ा है।
घड़े से रिस-रिस कर ज्यों पानी का रेला
मिट्टी के फर्श पर गिर कर खो जाता है
उसी तरह मेरी भी जिन्दगी का
एक-एक दिन घटकर
व्यवहार के तल पर समाप्त हो जाता है।
घड़े की तरह मेरा जीवन भी संशयित है,
मिट्टी के कणों की तरह अनियमित है।
'यह' फूट सकता है—'यह' टूट सकता है,
'यह' उतारा जा सकता है—'यह' हारा जा सकता है।
जानता हूँ, मानता हूँ,
फिर भी इस दिन-प्रतिदिन के झूठे झंझावात में,
स्वार्थ के प्रपात में,
बहता डूबता चला जाता हूँ।
सब समझता हूँ,
फिर भी विवशता यह है कि—
न समझ पाने का स्वाँग रचाता हूँ।

□ शकुन्तला नायर

एक आवाज

एक आवाज
वातावरण में फैल गयी है चतुर्दिक
और पहाड़
घाटियों को लीलने में व्यस्त है

मानवता
आजकल राक्षसी शिकंजे में फँस कर
सिसक रही है
और न्यायासन पर बैठे देवता
अपने जहर बुझे अस्त्र
आग उगलती भीड़ पर फेंक रहे हैं

कौन कहाँ हो सकता है
इसका आप अनुमान भी
        नहीं लगा सकते
मात्र यही सोच सकते हैं
कि जिसके लिए आप उम्र भर
पूरा करते रहे अपना फर्ज
वही वक्त की कसौटी पर
खरा नहीं उतर सका
और जब आया
लक्ष्मण रेखा को लांघने का वक्त
तब देखते ही देखते
आकाश दो टुकड़ों में
        विभाजित हो गया।

□ श्यामसुन्दर भारती

दो गजलें

हर गली-गाँव में सपनों को सजाने वाले
क्या हुए धान का अंबार लगाने वाले

भूख के पेड़ की शाखों से अटी है राहें
मिट गये खुद ही इसे जड़ से मिटाने वाले

क्या हुआ गीता-ओ-कुरआन का संदेश यहाँ
सो गये आप ही गैरों को जगाने वाले

हर अकीदे से मेरा ऐतबार उठ ही गया
अपने वन-चन के यहाँ आये मिटाने वाले

उन के दरबार से फरमान हुआ है जारी
हम को बर्दाश्त नहीं शोर मचाने वाले

ये मुनादी का अजब ढंग है इस महफिल मे
कत्ल हो जाते है आवाज उठाने वाले

हद तो ये है कि उठे आग हर इक सीने से
जाने क्या सोच के चुप है ये जमाने वाले

□

सुनते है कि अब जगमग हर एक का घर होगा
आबाद नयी सूरत सपनों का नगर होगा

ऐलान करिश्मे का हमने भी सुना लेकिन
मालूम नहीं जादू कब और किधर होगा

हम लोग तो सोते है फुटपाथ की गोदी में
शीशे के मकानों को पथराव का डर होगा

इस दौर का हर राही मोहताज है रहबर का
ऐसा ही अगर है तो अंधों का सफर होगा

ये आखिरी जलसा है सुनते है बहुत दिन से
ऐसा तो नही लगता इस पर भी अगर होगा

जिस शख्स के लफजों पर बाहुक्म मुनादी है
उस शख्स के लफ़्ज़ों में सचमुच ही असर होगा

वो कौन नहीं जिस को उस दिन की तमन्ना है
तस्वीर का असली रुख जब पेशे-नजर होगा

जो शख्स उजाले की लाएगा खबर पहले
उस शख्स के सिजदे में हर एक का सर होगा

□ अजीज आजाद

गजल

तुमने हर दौर के सूरज का लहू चाटा है
अब तो आकाश में इक जख्म नजर आता है

एक तपते हुए सेहरा की तरह फैल गये
जिस्म आगोश में आते ही झुलस जाता है

किस सलीके से मिटा देते हो लोगो के निशां
जैसे बिस्तर से कोई सलवटें मिटाता है

कैसी दहशत है कि अपनी भी साँस ऐसे लगे
जैसे वाज़ू में कोई साँप सरसराता है

ऐसे वच्चे को भला नींद कहाँ आएगो
थपकियाँ देके जिसे भेड़िया सुलाता है

□ वलवीरसिंह 'करुण'

गीत

सान चढ़े दर्दों से
विंधे हुए मन
तृष्णा के चावुक पर
सधे हुए तन

माँग रहे वगिया से
फूल की छुअन

अन्तहीन अँधियारा
पसरा हर ओर
जाने किस पर्वत पर
भटक गई भोर

घाटी में हाँफ रहा
लँगड़ा दिनमान
वस्ती में आ वैठा
एक वियावान

पतझर के वहकाये
भोले उपवन
ठान रहे मधु ऋतु मे
नाहक अनवन

पुती हुई तख्ती सा
कोरा आकाश।
क्षितिजों ने निगल लिये
दिशि के आभास

बिसर गये मंजिल की
सुधियों के क्षण
शेष रहा पीड़ा का
सिर्फ आचमन।

उगल रही रोशनी
सिर्फ अन्धकार
मावस के चरण पड़ी
पूनम लाचार

अपने ही परिचय से
हम खुद अनजान
तट-तट से पूछ रहे
अपनी पहचान

छल ही छल सीखे हैं
मूरख दर्पण।
खोज-खोज हारे है
हम अपनापन।

☐ प्रेम 'खकरधज'

दुःस्वप्न

मेरे चारों ओर पसरा है काला, चिपचिपा धुंआ
विज्ञान के फुंकारते अजदहे के नथुने से निकला

निरीह बेकसूर परिन्दे बिलबिलाते, चीखते,
गिर जाते हैं सड़क पर कटे हुए पंख, फटे हुए जिस्म
खून रिसता, बहता और सूख जाता है
आक्रोश नपुंसक सिसकी बन रह जाता है
क्योंकि वह आम आदमी है खास नहीं।
नोट, वोट या सोट की ताकत से रहित मानव भी
क्या मानव है ?
वह कीड़ा है, घास है, तिनका है।
स्वार्थ का दूध सत्ता का मक्खन, वर्ग भेद का घी
पीकर अजदहा पुष्ट होना फुकार रहा है।
जिसकी लाल आँखों में लहरा रही है प्यास,
प्यास मानव रक्त की।
जिसकी दहकती फुंकार मे जल रहे है
अफगानिस्तान, लेबनान, क्यूबा, वियतनाम
लेकिन चींटी अपनी आग को जब बाहर लाती है
तो गजराज को धराशायी कर जाती है।
तिनके की आग जब ज्वाला बन जाती है
तब स्वार्थ रोता है, वर्ग भेद बिलखता और सत्ता थर्राती
आग को हवा न दो मेरे मित्र
क्योंकि मेरे पड़ौस में तुम्हारा ही घर है
मुझे अपना नही
तुम्हारा ही डर है।

□ चैनराम शर्मा

छिटका हुआ घुंघरू

मैं वह घुंघरू
जो पायल से बिछड़ गया हूँ
अपनी बिरादरी से

चुपचाप खिसक गया हूँ।
अब मुझे
न कोई पूछता है, न सुनता है,
न देखता है, न निरखता है।
अपने भोलेपन में मिट्टी भरकर,
चमक-दमक और सुरीलापन खोकर
रास्ते का कंकर हो चुका हूँ
पूर्णतया आवारा
और खानाबदोश हो चुका हूँ
राह चलते
किसी भी पाँव से
मैं
बेरहमी से दब रहा हूँ
और शेष जिन्दगी
ठोकरों ही में बसर कर रहा हूँ।
संतुष्ट हूँ मैं
ठुकराया जाकर भी
राह चलते हर पाँव से
बनिस्पत
बँधकर चिपका रहूँ
जीवन भर किसी एक के पाँव से।

□ प्रेम मधुकर

चौखट

सोने चाँदी की चौखट में
तस्वीरें बन जड़े रहे
प्रतिमा जैसे खड़े रहे।

टूटी छत से रहे देखते,
पश्चिम सूरज निकल गया
एक धूप का बच्चा,
छाया कंबल ओढ़े फिसल गया
अँधियारे का ढूह बना सब
उसके ऊपर चढ़े रहे।

परछाईं से छोटे मानव
आँखों पर पट्टी बाँधे
बौने पुतले रहे देखते
लाशों को ढोते काँधे
आँखों तक रातों के काले
काजल लिपटे गड़े रहे।

काले अक्षर काली नजरें
नहीं अभी तक पढ़ पाईं
कोलतार से पुती सड़क पर
अंधे रुपयों की खाई
फिसल-फिसल कर उठे गिरे पर
अवश बन गये पड़े रहे।

☐ अब्दुल मलिक खान

अपने पास सवाल रहा

कितने मौसम बदले लेकिन, अपना वो ही हाल रहा
मैला कुरता, तंग पजामा फटा हुआ रूमाल रहा।

हमको मिली जनम से सूली,
आँसू, आहें, मजबूरी

पल-पल दहकी सेज चिता की
झुलसी काया अंगूरी
फिर भी साँपिन साँस चल रही, जीवन का जंजाल रहा।

फुटपाथों पर टूट गया था
शीश महल अरमानों का
तन-मन प्यास-प्यास करता था
गाँव नगर अनजानों का
चिन्ताएँ सब रूप ले गईं, अपने घर कंकाल रहा।

फूल खिले फागुन आया तो
हम थे पत्ते झड़े हुए
ऊपर कलियाँ महक रही थी
हम थे नीचे पड़े हुए
बंजारों से रहे डोलते, पास न कोई माल रहा।

जब भी हमने खुशी बुलाई
व्यथा उतरती डोली से
जहर मिली परसादी पाई,
पीड़ाओं की झोली से
उत्तर तो बँट गए कभी के, अपने पास सवाल रहा।

□ कुंदनसिंह सजल

गाँव मुझे अच्छा लगता है

गलियों में घूमने वाला
पनघट पर बतियाने वाला
गाँव मुझे अच्छा लगता है
आँगन में बचपन तुतलाना

खेतों में यौवन अंगड़ाता
यहाँ बुढ़ापा कदम-कदम पर
अनुभव की गाथा दोहराता
श्रम की गंग बहाने वाला
मिट्टी स्वर्ण बनाने वाला
गाँव मुझे अच्छा लगता है।
कलरव भरा यहाँ भिनसारा
गोधूली का गौरव न्यारा
दिन में सूरज और रात में—
यहाँ चाँद ने तन मन वारा
विहगों संग उठ जाने वाला
ग्वालों जैसा गाने वाला
गाँव मुझे अच्छा लगता है।
सावन के मल्हार रसीले
फागुन के त्यौहार नशोले
पग-पग यहाँ पलटती वसुधा
मधुमासी परिधान रंगीले
ढोलक, चंग बजाने वाला
आल्हा, कजरी गाने वाला
गाँव मुझे अच्छा लगता है।
इश्क, प्यार के चर्चे कम हैं
घूँघट के जलवे अनुपम है
यहाँ रूप पर लाज शर्म के
लगे सजग पहरे हरदम हैं
अधरों चुप रह जाने वाला
नयनों कुछ कह जाने वाला
गाँव मुझे अच्छा लगता है।

□ मकबूल रजा

दो कविताएँ

तीरगी कल कह रही थी

तीरगी कल कह रही थी
रोशनी की आरजू में,
किसलिए पागल हुए हो ?
तुम मुझे तस्लीम कर लो,
मैं तुम्हारे साथ हूं।
मेरी तन्हाई ने, शहर की हर शै को बुझा दिया है
मैं उजाला चाहूँ भी तो मुमकिन नहीं।

धुआँ

धुआँ घर से बाहर निकल जाने दो
वरना ये
घर की दीवारों पर
स्याही मल देगा।

□ रामनिवास सोनी

व्यथा की कथा

हर व्यथा की अपनी कथा है
और हर कथा का एक इतिहास।
जिसे कहने के लिए

फौलाद सा दिल
और
तूफान सा हौसला चाहिए।
इसी मिट्टी से रचना है वह चिराग
जिसकी लौ मे सत्य मुखरित है।
और
यह लपट सूर्य बनने से पहले
समझौतों के बियावान में न भटक जाय।
इसलिए जरूरी है
अपने अंतस की ऊर्जा से
चेतना के सघन वेग से
इस आवरण को हटा दिया जाय
जिसने सत्य पर अवगुंठन डाल रखा है।
किरण फूटेगी यदि जलन है
चेतना निखरेगी यदि स्पन्दन है
रश्मि को सूर्य बनने दो।
सत्य का पखेरू
मृषा के उद्घोष से
तनिक भी कंपित नही
भयभीत नही
घायल नहीं
ज्योति के साथ तम का निर्वाह
कितना बेमानी है
मगर यह दुनिया है
इसकी हर व्यथा की अपनी कथा है
और हर कथा का एक इतिहास।

□ निशांत

बच्चे और बच्चे

इस धरती पर कितने ही
ऐसे बच्चे है
जिनके कोई खेत नही
जबकि कई कुत्तों और चिड़ियों के नाम भी
खेत हैं
खेतों वाले बच्चे और चिड़ियाँ
मटर और चने खाते हैं
लेकिन वे सिर्फ टुकर-टुकर
देखते रह जाते है
इस धरती पर कितने ही
ऐसे बच्चे हैं
जिनके घर नहीं
वे खानाबदोशों की सी
जिन्दगी जीते है
इन बच्चों में से
कितने बच्चे अपने भविष्य से
चिंतित है ?
बहुत से तो अपने
नंगे और धूल-धूसरित
जीवन में ही खूब मस्त हैं।
लेकिन अभी-अभी
बेघर और बेजमीन हुए माता-पिता के बच्चे
अपने भविष्य से
बड़े चिन्तित हैं

वे बार-बार अपने खेत
और अपने घर के लिए
माँ-बाप से पूछते हैं !

□ क़मर मेवाड़ी

वे सब

वे हमारे साथ है
ऐसा वे कहते थे ।

हमे पक्का विश्वास था
कि वे हमारे साथ है
इसलिए चलते वक्त
हमने उन्हें आवाज दी थी

रात काफ़ी अंधेरी व डरावनी थी
और साथ ही ठण्डी भी
आस-पास कही बर्फ गिरी थी
तेज सर्दी इस बात का अहसास
दिला रही थी ।

पर हमारे हौसले बुलन्द थे
और इरादे पुख्ता
इसलिए हम चलते रहे
और साथ ही
उन्हें भी अपने साथ चलने के लिए
आवाज देते रहे ।

पर वे नीद मे थे
शायद गर्म रजाइयों में दुबके

अपनी औरतों में व्यस्त
इसलिए वे बाहर नहीं निकले ।

हम बगैर उनकी परवाह किए
मंजिल की तरफ़ बढ़ते रहे
बढ़ते रहे
सुबह जब हम वहाँ पहुँचे
तब हम आश्चर्यचकित थे
वे सब के सब
दुश्मन के साथ खड़े थे
हमसे संघर्ष के लिए तैयार

हाँ यह सच है

हाँ यह सच है
मेरी बाहों में एक पूरा आकाश कैद है
फिर भी मौसम गम्भीर होता चला जा रहा है
धीरे-धीरे उतर रहा है धरती पर
आकाश से भयानक अँधेरा
और देखते ही देखते
धरती पर कालिख बिछती चली जा रही है ।

वही पहाड़ है, वही समन्दर
और वही नदियाँ
वही सर्द हवा है, वही गरम-गरम लू
और वही बिलखती हुई बरसात
फिर हम सोच रहे हैं . . .
मौसम खुशगवार हो रहा है ।

हवा हज़ार-हज़ार प्रश्न उछालती हुई

हमारे कानों के पास से सनसनाती हुई
गुजर जाती है
कि क्यों जिन्दा जलाये जा रहे हैं लोग
क्यों अनाथ हो रहे हैं दुधमुंहे बच्चे
क्यों जवान औरतों की अस्मत सरे आम लुट रही है ?
क्यों बदचलन और आवारा कुत्ते
खुले आम स्वतंत्र विचरण कर रहे हैं ?

हां यह सच है
मैं अब तक
तुम्हारी खूबसूरत आँखों के समन्दर में
डुबकियां लगाता रहा
जहां किसी और का प्रवेश वर्जित था
पर इस बीच बहुत कुछ ग़लत हो गया
मेरा शरीर शक्तिहीन हो गया
चेहरे की रौनक जाती रही
और आँखों की ज्योति छिन गयी
और मैं बेसहारा होकर
टूटता चला गया ।

दोस्त !
मौसम खुशगवार नहीं है
गम्भीर होता चला जा रहा है
हां, यह सच है
कि मेरी बाहों में एक पूरा आकाश क़ैद है
और वह गर्म तवे-सा जल रहा है
पेड़ों की फुनगियों पर झांकने लगा है
सुर्ख़ सवेरा
और वक्त
विषधरों के साथ संघर्ष में
रत है

लेखक सम्पर्क

पुष्पलता कश्यप, स० अ०, रा० पर्दा उ० प्रा० कन्या विद्यालय, पावटा, जोधपुर
अखिलेश्वर, 30 मन्डी ब्लाक श्रीकरणपुर (श्रीगंगानगर)
कैलाश मनहर, स्वामी मोहल्ला, जयपुर
मगरचन्द्र दवे, स० अ०, रा० मा० वि०, हरजी (जालोर)
रघुनन्दन त्रिवेदी, रा० शा० शि० महाविद्यालय, जोधपुर
भगवतीलाल व्यास, व्याख्याता, लोकमान्य तिलक टी० टी० कॉलेज, डबोक (उदयपुर)
वासु आचार्य, वाहेती चौक, बीकानेर
भागीरथ भार्गव, 88, आर्यनगर, अलवर
भगवतीप्रसाद गौतम, क० व्या०, रा० उ० मा० वि० भवानी मंडी (झालावाड़)
जितेन्द्र, श्री गोदावत जैन गुरुकुल विद्या०, छोटी सादड़ी (राज०)
अर्जुन कावड़िया, स० अ०, उच्च० प्रा० विद्यालय, सुन्दरचा राजसमन्द, (उदयपुर)
अमरसिंह पाण्डेय, वरपाड़ा, मुसावर (भरतपुर)
प्रकाश नारायण 'तनिक', स० अ०, लू० बा० रा० उ० प्रा० वि० पनेर वाया रूपनगढ़ (अजमेर)
बाबू 'हँसमुख', भारतीय न्यू कॉलोनी, मनोहरपुर (जयपुर)
श्याम सुन्दर भारती, फतेहसागर, जोधपुर
रूपसिंह राठौड़, स० अ०, रा० उ० प्रा० वि० बास घासीराम (झुंझुनूं)
जगदीशप्रसाद सैनी, क० व्या०, रा० उ० मा० वि० दातारामगढ (सीकर)
श्रीनन्दन चतुर्वेदी, प्रधा० रा० मा० वि० मोठपुर (कोटा)
चतुर कोठारी, कोठारी सदन, बड़ापाड़ा, राजसमंद (उदयपुर)
आनन्द कुरेशी, सेन्ट पैट्रिक स्कूल, डूंगरपुर
रमेशचन्द्र भट्ट 'चन्द्रेश', मोहला नीमघटा, डीग (भरतपुर)
अर्जुन 'अरविन्द', काली पलटन रोड़, टोंक
पृथ्वीराज दवे 'निराश', स० अ०, रा० मा० वि० सिणधरी (बाड़मेर)
पजोड़ीमल सैनी, क० व्या०, श्री क० न० रा० उ० मा० वि० जोबनेर (जयपुर)
गोपालप्रसाद मुदगल, उ० जि० शि० अ०, डीग (भरतपुर)
मनमोहन झा, प्रधा०, रा० मा० वि० खमेरा (उदयपुर)

नन्दकिशोर चतुर्वेदी, पालुन्दा, वाया बेगूं (चित्तौड़गढ़)
मोड़सिंह चस्ता 'मृगेन्द्र', स० अ० रा० मा० वि० बड़ा वाया घमोतर (चित्तौड़गढ़)
कुन्दनसिंह सजल, उदय निवास, रायपुर (पाटन) सीकर
शिव 'मृदुल', व० व्या०, रा० उ० मा० वि० सीमलवाड़ा (डूंगरपुर)
चेतराम शर्मा, स० अ० रा० मा० वि० माऊरोदा (उदयपुर)
सांवर दइया, जेलरोड, बीकानेर
निशांत, डी० राज० पेन्टर, पीलीबंगा (श्रीगंगानगर)
कु. कैरोलीन जोसफ व्या० रा० बा० उ० प्रा वि०, खांदू (बांसवाड़ा)
राजेन्द्रसिंह चौहान, ज्ञान ज्योति उ० मा० वि०, श्रीकरणपुर (श्रीगंगानगर)
मुरलीधर वैष्णव 'हारिल', रा० उ० प्रा० वि० साकरड़ा (उदयपुर)
मकबूल रजा, रेफिगाह उ० प्रा० वि०, डूंगरपुर
ममोनाथ अवस्थी, प्र० अ० रा० प्रा० वि०, शकरपुर (सवाईमाधोपुर)
अरनो रॉबर्ट्स, रा० उ० मा० वि० रामसर (अजमेर)
रश्मि गुप्ता, स० अ० रा० मा० वि० मेनसर (कोटा)
कु सुशाल श्रीवास्तव, व० व्या० पीरामल उ० मा० वि० बगड़ (झुंझनूं)
प्रेम 'चकरधर' स० अ० रा० मा० वि० सिणधरी, बाड़मेर
कमला वर्मा, प्रयाग कुटीर, नई लाईन, गंगाशहर, बीकानेर
श्रीमती आशा शर्मा, प्र० अ डी० बी० बालिका विद्यालय, मलसीसर (झुंझनूं)
जनकराज पारीक, प्र० अ० ज्ञानज्योति उ० मा० वि०, श्रीकरणपुर (श्री गंगानगर)
केशव पथिक, स० अ० रा० उ० प्रा० वि० (कचहरी) कपासन (चित्तौड़गढ़)
'रमेश मयंक' स० अ० रा० मा० वि० बस्सी (चित्तौड़गढ़)
वरदीचन्द्र राव, स० अ० रा० बा० मा० वि० आमेट (उदयपुर)
शकुन्तुला नायर, स० अ० रा० प्रा० वि० बामडोला (उदयपुर)
अजीज आजाद, मोहल्ला चूनगरान, बीकानेर
बलबीरसिंह 'करुण', प्रधा० रा० मा० वि० लादूसर (झुंझनूं)
प्रेम मधुकर, स० अ० रा० मा० वि० बामला वाया बारां (कोटा)
अब्दुल मलिक खान, प्रेस रोड सिंधी कॉलोनी, भवानी मंडी (झालावाड़)
रामनिवास सोनी, कालीजी का चौक लाडनूं (नागौर)
कमर मेवाड़ी, चांदपोल, कांकरोली (उदयपुर)

शिक्षक दिवस प्रकाशन

सम्पूर्ण सूची

1967 :

1. प्रस्तुति (कविता), 2. प्रस्थिति (कहानी), 3. परिक्षेप (विविधा), 4. सालिक ए गोहर (उर्दू), 5. वक्त की दावत (उर्दू)

1968 :

6. कैसे भूलूं (संस्मरण), 7 सन्निवेश (विविधा), 8. तराने बागबां (उर्दू)

1969 :

9. प्रस्तुति-2 (कविता), 10. बिम्ब-बिम्ब चाँदनी (गीत), 11. प्रस्थिति-2 (कहानी), 12. अमर चूनड़ी (राजस्थानी कहानी), 13. यदि गांधी शिक्षक होते (निबन्ध), 14. गांधी-दर्शन और शिक्षा (शिक्षा दर्शन), 15. सन्निवेश—2 (विविधा)

1970 :

16. सूना गाँव (गीत), 17. खिड़की (कहानी), 18. कैसे भूलूं-दो (संस्मरण), 19. सन्निवेश—3 (विविधा)

1971 :

20. प्रस्तुति-3 (कविता) 21. प्रस्थिति-3 (कहानी), 22. सन्निवेश-4 (विविधा)

1972 :

23. प्रस्तुति-4 (कविता), 24. प्रस्थिति-4 (कहानी), 25. सन्निवेश-5 (विविधा), 26. माळा (राजस्थानी विविधा)

1973 :

27. धूप के घरौन्दे (कविता), 28 खिलखिलाता गुलमोहर (कहानी), 29. रेजगारी का रोजगार (एकांकी), 30 अस्तित्व की खोज (विविधा), 31. जूना वेलो : नुवां वेलो (राजस्थानी विविधा)

नन्दकिशोर चतुर्वेदी, पाछुन्दा, वाया वेगूं (चित्तौड़गढ)
मोड़सिंह बल्ला 'मृगेन्द्र', स० अ०. रा० मा० वि० थडा वाया घमोतर (चित्तौडगढ)
कुन्दनसिंह सजल, उदय निवास, रायपुर (पाटन) सीकर
शिव 'मृदुल', क० व्या०, रा० उ० मा० वि० भीमनवाडा (डूंगरपुर)
चैतराम शर्मा, स० अ० रा० मा० वि० साकरोदा (उदयपुर)
सांवर दइया, जेलरोड, बीकानेर
निशांत, डी० राज० पेन्टर, पीलीबगा (श्रीगंगानगर)
कु. केरोलीन जोसफ, प्रधा० रा० बा० उ० प्रा वि०, खांदू (बांसवाडा)
गजेन्द्रसिंह चौहान, ज्ञान ज्योति उ० मा० वि०, श्रीकरणपुर (श्रीगगानगर)
मुरलीधर वैष्णव 'हारिल', रा० उ० प्रा० वि० साकरड़ा (उदयपुर)
मकबूल रजा, मेकिगाह उ० प्रा० वि०, डूंगरपुर
नमोनाथ अवस्थी, प्र० अ० रा० प्रा० वि०, शकरपुर (सवाईमाधोपुर)
अरनी रॉबर्ट्स, रा० उ० मा० वि० रामसर (अजमेर)
रश्मि गुप्ता, स० अ० रा० मा० वि० मेनसर (नोखा)
कु सुशाल श्रीवास्तव, क० व्या० पीरामल उ० मा० वि० बगड़ (झुंझनूं)
प्रेम 'चकरधज' स० अ० रा० मा० वि० सिणधरी, बाड़मेर
कमला वर्मा, प्रयाग कुटीर, नई लाईन, गगाशहर, बीकानेर
श्रीमती आशा शर्मा, प्र० अ० डी० बी० बालिका विद्यालय, मलसीसर (झूंझनूं)
जनकराज पारीक, प्र० अ० ज्ञानज्योति उ० मा० वि०, श्रीकरणपुर (श्री गंगानगर)
केशव पथिक, स० अ० रा० उ० प्रा० वि० (कचहरी) कपासन (चितौड़गढ)
'रमेश मयंक' स० अ० रा० मा० वि० वस्सी (चितौड़गढ)
बरदीचन्द्र राव, स० अ० रा० बा० मा० वि० आमेट (उदयपुर)
शकुन्तला नायर, स० अ० रा० प्रा० वि० बागड़ोला (उदयपुर)
अजीज आजाद, मोहल्ला चूनगरान, बीकानेर
बलवीरसिंह 'करुण', प्रधा० रा० मा० वि० लादूसर (झुंझनूं)
प्रेम मधुकर, स० अ० रा० मा० वि० बामला वाया बारां (कोटा)
अब्दुल मलिक खान, प्रेम रोड सिंधी कॉलोनी, भवानी मंडी (झालावाड़)
रामनिवास सोनी, कालोजी का चौक लाडनूं (नागौर)
कमर मेवाड़ी, चांदपोल, काकरोली (उदयपुर)

शिक्षक दिवस प्रकाशन

सम्पूर्ण सूची

1967 :

1. प्रस्तुति (कविता), 2. प्रस्थिति (कहानी), 3. परिक्षेप (विविधा), 4 सालिक ए गोहर (उर्दू), 5. दार की दावत (उर्दू)

1968 :

6. कैसे भूलूं (संस्मरण), 7 सन्निवेश (विविधा), 8 दामाने बागवां (उर्दू)

1969 :

9. प्रस्तुति-2 (कविता), 10. बिम्ब-बिम्ब चाँदनी (गीत), 11. प्रस्थिति-2 (कहानी), 12. अमर चूनड़ी (राजस्थानी कहानी), 13. यदि गांधी शिक्षक होते (निबन्ध), 14. गांधी-दर्शन और शिक्षा (शिक्षा दर्शन), 15. सन्निवेश —2 (विविधा)

1970 :

16. सूना गाँव (गीत), 17. खिड़की (कहानी), 18. कैसे भूलूं-दो (संस्मरण), 19. सन्निवेश—3 (विविधा)

1971 :

20 प्रस्तुति-3 (कविता) 21. प्रस्थिति-3 (कहानी), 22. सन्निवेश-4 (विविधा)

1972 :

23. प्रस्तुति-4 (कविता), 24. प्रस्थिति-4 (कहानी), 25. सन्निवेश-5 (विविधा), 26 माळा (राजस्थानी विविधा)

1973 :

27. धूप के पखेरू (कविता), 28. खिलखिलाता गुलमोहर (कहानी), 29. रेजगारी का रोजगार (एकांकी), 30. अस्तित्व की खोज (विविधा), 31. जूना बेलो : नुवाँ बेलो (राजस्थानी विविधा)

1974 :

32 रोशनी बाँट दो (कविता) सं० रामदेव आचार्य, 33. अपने आस-पास (कहानी) सं० मणि मधुकर, 34. रङ्ग-रङ्ग बहुरङ्ग (एकांकी) सं० डॉ० राजानन्द, 35. आँधी अर आस्था व भगवान महावीर, (दो राजस्थानी उपन्यास) सं० यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', 36 बारपड़ो (राजस्थानी विविधा) सं० वेद व्यास

1975 :

37. अपने से बाहर अपने में (कविता) सं० मंगल सक्सेना, 38. एक और अन्तरिक्ष (कहानी) सं० डॉ० नवलकिशोर, 39. संभाल (राज० कहानी) सं० विजयदान देथा, 40. स्वर्ग खण्ड (उपन्यास), ले० भगवती प्रसाद व्यास, सं० डॉ० रामदरश मिश्र, 41. विविधा सं० डॉ० राजेन्द्र शर्मा

1976 :

42. इस बार (कविता) सं० नन्द चतुर्वेदी, 43. संकल्प स्वरों के (कविता) सं० हरीश भादानी 44 बरगद की छाया (कहानी) सं० डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, 45. चेहरों के बीच (कहानी व नाटक) सं० योगेन्द्र किसलय, 46. माध्यम (विविधा) सं० विश्वनाथ सचदेव

1977 :

47. सृजन के आयाम (निबन्ध) सं० डॉ० देवीप्रसाद गुप्त, 48. बयो (कहानी व लघु उपन्यास) सं० श्रवणकुमार, 49. चेते रा चितराम (राजस्थानी विविधा) सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी, 50. समय के सदर्भ (कविता) सं० जुगमन्दिर तायल, 51. रङ्ग-वितान (नाटक) सं० सुधा राजहंस

1978 :

52. अंधेरे के नाम संधि-पत्र नहीं (कहानी संकलन) सं० हिमांशु जोशी 53. सखाण (राजस्थानी विविधा) सं० रावत सारस्वत 54. रंगीला संगीत (कविता संकलन) नन्दकिशोर आचार्य, 55. दो गाँव (उपन्यास) ले० मुकारब खान आजाद, सं० डॉ० आदर्श सक्सेना 56. अभिव्यक्ति की तलाश (निबन्ध) सं० डॉ० रामगोपाल गोयल ।

1979 :

57. एक कदम आगे (कहानी संकलन) सं० ममता कालिया, 58. लगभग

जीवन (कविता संकलन) सं० लीलाधर जगूड़ी, 59. जीवन यात्रा का कोलाज/न० ? (हिन्दी विविधा) सं० डॉ० जगदीश जोशी, 60, कोरणी कलम री (राजस्थानी विविधा) सं० अन्नाराम सुदामा, 61. यह किताब बच्चों की (बाल साहित्य) सं० डॉ० हरिकृष्ण देवसरे।

1980 :

62. पानी की लकीर (कविता संकलन) सं० अमृता प्रीतम, 63. प्रयास (कहानी संकलन) सं० शिवानी, 64. मजूषा (हिन्दी विविधा) स० राकेश जैन, 65. अंतस रा आखर (राजस्थानी विविधा) सं० नृसिंह राजपुरोहित, 66. खिलते रहे गुलाब (बाल साहित्य) सं० जयप्रकाश भारती

1981

67. अंधेरों का हिसाब (कविता संकलन) स० सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, 68. अपने से परे (कहानी सकलन) स० मन्नू भण्डारी, 69. एक दुनिया बच्चों की (बाल साहित्य) स० पुष्पा भारती, 70. सिरजण (राजस्थानी विविधा) स० तेजसिंह जोधा, 71. वन्देमातरम् (हिन्दी विविधा) सं० विवेकी राय।



राजस्थान के शिक्षक दिवस प्रकाशन

कुछ सम्मतियाँ

राजस्थान शिक्षा विभाग द्वारा शिक्षक दिवस प्रकाशन योजना के अन्तर्गत राज्य के सृजनशील शिक्षक साहित्यकारो की चार कृतियाँ 1980 वर्ष की सार्थक उपलब्धियाँ हैं।

नवभारत टाइम्स

संग्रह मे सभी कविताएँ, कविता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, यद्यपि कुछ कविताओं को पढकर कविता जैसा कुछ नही लगता किन्तु कलात्मक प्रयास को नकारा भी नही जा सकता।

—नवभारत टाइम्स

'प्रयास' कहानी लेखकों का उत्तम प्रयास है तथा शिवानी का सम्पादन-वक्तव्य नवलेखकों को गुरु-प्रेरणा का प्रयास है।

—नवभारत टाइम्स

'मंजूषा' मे संकलित अधिकांश रचनाएँ एक और शिक्षकों की जीवन-पीड़ा तथा घुटन प्रस्तुत करती है तो दूसरी ओर सामाजिक मूल्यों मे उनकी आस्था, व्यवसाय के प्रति उनकी निष्ठा और शिक्षार्थियो के गिरते स्तर के प्रति चिन्ता तथा जागरूक उत्तरदायित्व उभारती है।

— नवभारत टाइम्स

संकलन मे एक तरफ तो ऐसी रचनाएं है जिनसे बच्चो को चरित्र निर्माण की प्रेरणा मिलेगी तो दूसरी तरफ ऐसी रचनाएं भी हैं जिनसे उनका स्वस्थ मनोरंजन भी होगा।

—समाज कल्याण, दिल्ली

रचनाओं की विषय वस्तु परंपरागत होते हुए भी बालकों के मानसिक विकास में सहायक हो सकती है। सभी रचनाओ मे विशेषकर कहानियो में अनुभव की उष्णता विद्यमान है। संकलन निश्चय ही नन्हे-मुन्ने पाठकों के लिए उपयोगी है।

—समाज कल्याण, दिल्ली

संग्रह की अधिकतर कविताएँ जिन्दगी के फोटो हैं। इनमे किसी प्रकार के छद्म आदर्श की प्रस्तावना नही है।

—समाज कल्याण, दिल्ली

इस संग्रह की अधिकांश कविताएं एक ऐसे आदमी की छटपटाहट को व्यक्त करने का प्रयास है जो निरन्तर अपरिचित एवं अमानवीय होते जा रहे परिवेश से पूर्णतया संपृक्त है। इस संपृक्ति के कारण ही राजस्थान के ये सृजनशील अध्यापक अपने आसपास के परिचित संदर्भ को सृजनात्मक आयाम प्रदान कर पाए हैं।

—समाज कल्याण, दिल्ली

जिस तरह संग्रह की रचनाओं की संवेदना जिन्दगी से निष्पन्न हैं, उसी तरह इनकी संरचना भी। कविताओं की संरचना में कोई जटिलता नहीं है। लगभग सभी कविताओं में एक अनगढता मौजूद है। यह अनगढता ही इन कविताओं को विशिष्ट बनाती है।

—समाज कल्याण, दिल्ली

राजस्थान के शिक्षा-विभाग ने विगत कुछ वर्षों से शिक्षक दिवस पर राज्य के शिक्षक साहित्यकारों की रचनाएँ पुस्तक रूप में छापने की एक स्वस्थ परम्परा प्रारंभ की है। इस योजना से अनेक सृजनशील साहित्यिकारों को साहित्यक क्षेत्र में अपना स्थान बनाने के लिए भी प्रेरणा तथा प्रोत्साहन मिला है।

—दैनिक हिन्दुस्तान

'रानी की लकीर' कुल मिलाकर यह एक अच्छा संकलन है और उसमें सम्मिलित कवियों की क्षमता परिचायक है।

—दैनिक हिन्दुस्तान

'अतस रा आखर' में आरम्भ से अन्त तक राजस्थानी की ही छटा मिलती है।

—दैनिक हिन्दुस्तान

आज भी समाज में अध्यापक से ही आदर्श जीवन की अपेक्षा की जाती है, अतः इन कहानियों में से अधिकाश का स्वर आदर्श और सुधारवादी रहा है तो इसे अस्वाभाविक नही माना जा सकता।

—प्रकर, दिस., 80

जयप्रकाश भारती ने अध्यापकों की इस अनमोल भेंट को सम्पादित कर बच्चों के सामने प्रस्तुत किया है, सम्पादक का कहना है—जब-जब बच्चे इसे पढ़ेंगे मनोरंजन होने के साथ उनको कही कोई रोशनी की लकीर भी दिखाई देगी।

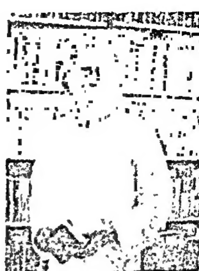
—दैनिक हिन्दुस्तान

सरकारी महकमों ने इतना निराश किया है कि जब हम राजस्थान के शिक्षा-विभाग के प्रकाशनों पर नजर डालते हैं तो एक बारगी आश्चर्य में ही डूब जाते हैं।

—दैनिक राजस्थान पत्रिका

संकलन की अधिकांशतम कविताएँ जैसा कि कहा—जीवन की विसंगतियों, दैनिक जीवन की आपा-धापी और उधेड़बुनों को व्यक्त करती हैं। इनमें ज्यादातर प्रलाप लगती है, कविता कम।

- इतवारी पत्रिका



सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

जन्म : 15 सितंबर 1927

स्थान : बस्ती, उत्तरप्रदेश

प्रकाशित कृतियां

कविताएं . कविताएं—1, काठ की घंटियां, बांस का पुल, कविताएं—2, एक सूनी नाव, गर्म हवाएं, कुआनो नदी, जंगल का दर्द.

कथा साहित्य : कच्ची सड़क, अँधेरे पर अँधेरा (कहानी) दो लघु उपन्यास, उड़े हुए रंग (उपन्यास)

नाटक : बकरी, लड़ाई, अब गरीबी हटाओ.

बाल साहित्य : बतूता का जूता, महगू की टाई (कविताएं) भों भों—खो खों, लाख की नाटक (नाटक)

यात्रा संस्मरण : कुछ रंग, कुछ गंध.

लगभग सभी भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त कवि और कथाकार के रूप में रूसी, जर्मन, पोलिश, चेक, बुल्गारी, इतालवी, जापानी आदि विश्व की अनेक भाषाओं में अनूदित।

दिनमान में मुख्य उप-संपादक।